ॐ

स्वामी शिवानन्द कृत

वेदान्त ग्रन्थ

तत्वविचारदीपक

धोलका जिला अमदाबाद

भूमिका

यह ग्रंथ तत्त्वविचार दीपक विषे, स्थूल देह सूक्ष्म देह कारण देह और महाकारण देह ये चारों देह के तत्त्व सहित तूर्या तीत उपदेश लय-चिन्तन और योग क्रिया-गुरु, शिष्य अद्वैत प्रश्नोत्तर सो केवल परमहंस के निमित्त अर्पण परमार्थ हित है, स्वार्थ नहीं परन्तु ग्रंथ छपावनें कूं तथा ऋषिकेश में ग्रंथ पहुँचानें जितनी ही, धनकी अपेक्षा है अधिक नहीं,

और जो किसी अपने दाम से छपवाई के परमार्थ अथवा बिक्री करे ताकूं रजिष्टर विना परवानगी है

द० स्वामी शिवानन्द
गुरु सच्चिदानंद गिरिजी

जाकि हद नहीं, और जाका अन्य आधार भी यन नहीं, किन्तु सर्वका अपने ही आधार है, काहेतें, संपूर्ण प्रपंच जड़ है औ निर्गुण वस्तु ही चेतन है, सो जड़ किसी प्रकार चेतन, का आधार बने, नहीं, औ संपूर्ण जड़का आधार चेतन है सो चेतन यह बुद्धिका साक्षी है, "सोऽहं में शुद्ध अपार हूं", ताकूं प्रत्य कहे है, सो प्रत्य चौदहो लोक विषे च्यार खांणि में बसे है, ऐसे कहिये स्वर्गादिक लोक औ नाग कहिये पाताल आदि लोक औ जन कहिये इस मृत्यु-लोक, ताके विषे च्यारु खांणिमें, अस्ति भांति प्रिय रूपतें, प्राणि मात्र में समाइ रह्यो है, अस्ति कहिये है, भांति कहिये चिदाभास प्रतीत औ प्रियरूप कहिये आनन्द रूप तें सर्व में व्यापक है काहेतें ! जैसे पुरुष कूं धन प्रिय है धन तें अधिक पुत्र प्रिय है, पुत्रतें अधिक स्त्री प्रिय है, स्त्री से निज देह अधिक प्रिय है देहतें अधिक प्रिय इन्द्रिय है, इन्द्रिय तें अधिक प्राण प्रिय है औ तिन सर्व तें अधिक प्रिय आत्मा है, इस रीतिसे अस्ति भांति प्रिय रूप सब

घट चैतन व्यापक है, औ चार खाणि—जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज जाके ऊपर जर लपेटे हुये जन्म होवे, ताकूं जरायुज खाणि कहिये है, औ जाका अंडे के विषे देह उपजे, सो अंडज खाणि कहिये है, और जाका देह कीच आदिक पसीने से उत्पन्न होवै ताकूं स्वेद खाणि कहिये है, औ पृथ्वी कूं भेदन कर के जो वृक्षादिक उगते है, ताकूं उद्भिज खाणि कहिये है, ये चार खाणि में जो वसे है, सो जड़ चेतन कहिये चर अचर विषे भरपूर व्यापक है, सो हाथी में वडा औ रजकण में छोटा देख पडता है, सो सच्चिदानन्द के विषे यह संसार उत्पन्न होता है, सो संसार अविद्या का कार्य है, ताकूं असार कहिये है, सो कार्य सहित अविद्या की निवृत्ति होनेसे मैं शिवानन्द सो ब्रह्मरूप हूं ॥१॥२॥३॥४॥

दीपक वर्णन ॥ दोहा ॥

तेल रूप जु तत्वभर्‌यो, विवेक बाति बनाय।
देखहु विचार दीपसें, घट भीतर ही जनाय ॥५॥

तत्त्वविचार दीपक विषय सूचीपत्र ।

मूल	विषयनाम	पृष्ठाङ्क	मूल	विषयनाम	पृष्ठाङ्क
१	मंगल	१	१०६	पंचकोष	८७
८	अनुबंध	५	११८	आकाशावत चैतन	९४
४७	श्रीगुरुलक्षण	२५	१३८	भागत्याग लक्षणा	१०४
५२	स्थूलदेह	२६	१४७	महाकारण देह	११०
५८	जाग्रत् अवस्था	४३	१५१	तूर्यातीतोपदेश	११३
६१	समूमहतत्त्व	४६	१५४	लयचिंतन	१२०
८५	सूक्ष्म देह	६१	१६५	योग क्रिया	१५०
९०	स्वप्नअवस्था	७७			
९२	सममहतत्त्व	७८			
१०४	कारण देह	८३			

ॐ

स्वामी शिवानन्द कृत ग्रन्थ

श्री तत्त्वविचार दीपक प्रारंभः

निर्गुण वस्तु निर्देश रूप मंगल ॥ दोहा ॥

जो निरगुण श्रुति भाखियो, अनहद निर आधार ।
वे साची यह बुद्धिको, सो मैं शुद्ध अपार ॥१॥
चार खाणिमें सो बसै. देव नाग जनमाइ ।
अस्ति भांति प्रियरूपतें, सबघट रह्यो समाइ ॥२॥
युं व्यापक संसार में, जड़ चैतन भरपूर ।
बड़े देहमें बड़ दरशै, छोटे रज कण धूर ॥३॥
ता सत चित आनंदमें अस उपजे संसार ।
शिवानंद सोइ रूप है,, जामे नही असार ॥४॥

टीका—जावस्तु कुं वेद निर्गुण कहे है. औ

आकि हद नहीं, और आका अन्य आधार भी धन नहीं, किन्तु सर्वका अपने ही आधार है, काहेतें, संपूर्ण प्रपंच जड़ है औ निर्गुण वस्तु ही चैतन है, सो जड़ किसी प्रकार चैतन, का आधार बने, नहीं औ संपूर्ण जड़का आधार चैतन है सो चैतन यह बुद्धिका साक्षी है, "सोइ मैं शुद्ध अपार हूं", ताकूं ब्रह्म कहे हैं, सो ब्रह्म चौवहो लोक विषे चार खांणि में बसे है, देव कहिये सर्गादिक लोक औ नाग कहिये पाताल आदि लोक औ जन कहिये इस मृत्यु-लोक, ताके विषे चारु खांणियें, अस्ति भाति प्रिय रूपतें, प्राणि मात्र में समाइ रह्यो है, अस्ति कहिये है, भांति कहिये चिदाभास प्रतीत औ प्रियरूप कहिय आनन्द रूप त सर्व में व्यापक है काहेतें ? जैस पुरुष कूं धन प्रिय है धन त अधिक पुत्र प्रिय है, पुत्रत अधिक स्त्री प्रिय है, स्त्री त निज देह अधिक प्रिय है, देहत अधिक प्रिय इन्द्रिय है, इन्द्रिय त अधिक प्राण प्रिय है, औ तिन सर्व त अधिक प्रिय आत्मा है, इस रीतिस अस्ति भाति प्रिय रूप सब

घट चैतन व्यापक है, औ चार खाणि–जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज जाके ऊपर जर लपेटे हुये जन्म होवे, ताकूं जरायुज खाणि कहिये है, औ जाका अंडे के विषे देह उपजे, सो अंडज खाणि कहिये है, और जाका देह कीच आदिक पसीने से उत्पन्न होवै ताकूं स्वेद खाणि कहिये है, औ पृथ्वी कूं भेदन कर के जो वृक्षादिक उगते हैं, ताकूं उद्भिज खाणि कहिये है, ये चार खाणि में जो वसे है, सो जड़ चेतन कहिये चर अचर विये भरपूर व्यापक है, सो हाथी में बडा औ रजकण में छोटा देख पड़ता है, सो सच्चिदानन्द के विषे यह संसार उत्पन्न होता है, सो संसार अविद्या का कार्य है, ताकूं असार कहिये है, सो कार्य सहित अविद्या की निवृत्ति होनेसे मैं शिवानन्द सो ब्रह्मरूप हूं ॥१॥२॥३॥४॥

दीपक वर्णन ॥ दोहा ॥

तेल रूप जु तत्वभरयो, विवेक बाति बनाय।
देखहु विचार दीपसें, घट भीतर ही जनाय ॥५॥

टीका—यह ग्रंथ में तत्व सो तेल रूप है, ताके विषे जिज्ञासु अपने शुद्ध विवेक रूप बाति बनाइ के युक्ति रूप अग्नि से प्रगट करि के विचार स्वरूप दीपक से जो यह ग्रन्थ कू गुरुमुख द्वारा श्रवणादिक करेगा सो पुरुष अपने अन्तरमाहा निजानन्द प्राप्त करेगा, सो निर्संशय ॥४॥

श्रवणादिक ॥ दोहा ॥

श्रवण मनन निदिध्यासन, करे जो चित्त लगाय।
तौ मन मलीन नव रहे, दोप दूर हो जाय ॥६॥
जो आदि अनुबन्धको, पढे शिष्य सुजान।
सोइ प्रवर्त हुइके, लहे मेव ब्रह्मज्ञान ॥७॥

टीका—एक श्रवण दूसरा मनन तीसरा निदिध्यासन ताकूं जो मनुष्य चित्त लगाके गुरु-सेवासे करेगा, ताका मन शुद्ध हो जायेगा, काहेतें ? अन्तःकरण में असम्भावना औ विपरित भावना दिक दोप होय है ताकी निवृत्ति के वास्ते श्रवण-

दिक सो करे, संशय कूं असम्भावना कहिये है, और विपर्ययकूं विप्रित भावना कहिये हैं, श्रवण से प्रमाण का संदेह दूर होवे है औ मननसे प्रमेय का संदेह दूर होता है, "वेदान्त वाक्य अद्वितीय ब्रह्मके प्रतिपादक है, अथवा अन्य अर्थ कूं प्रतिपादन करे है," ऐसा जो प्रमाण में संदेह सो, श्रवणसे दूर होता है, औ जीव ब्रह्म का अभेद सत्य है अथवा भेद सत्य है "ऐसा प्रमेय में संदेह सो मनन से दूर होता है" देहादिक सत्य है औ जीव ब्रह्म का भेद सत्य है, "ऐसे ज्ञान कूं विप्रित्त भावना कहिये है, उसी कूं विपर्यय कहे है, ताकूं निदिध्यासन दूर करे है, इस रीति से श्रवणादिक तीनों असम्भावना विप्रित भावना के नाशक है, यातें श्रवणादिक अवश्य कर्तव्य है, जो कोई बुद्धिमान पुरुष आदि कहिये प्रथम अनुबंध पढ़ेगा सों यह ग्रन्थ विषे प्रवर्त्त हुइ के भेव कहिये आत्मा सोइ ब्रह्म है, और अनात्मा भी ब्रह्म है, ऐसा ज्ञान दृढ़ करेगा ॥ ६ ॥ ७ ॥

अनुबंध ॥ रोला छन्द ॥

अब अनुबध कहत सो, चारि ठानि लीजिये ।
अधिकारी सम्बध विषय, प्रयोजन चव कीजिये ॥
तामें अधिकारी कू साधन सहित भनत है ।
विवेक वैराग मुमुक्षता, पट सपति गनत है ॥ ८ ॥
मल विक्षेप जाके नहीं, इक अज्ञान देखिये ।
चारि साधन सम्पन सो अधिकारी लेखिये ॥
आत्मा अविनाश तातें, जग प्रतिकूल कहावे ।
ऐसो ज्ञान विवेक सु, मूल साधन बतावे ॥ ६ ॥
चौद भुवन के भोगमें, रचक न होय राग ।
जु ज्ञानि जन मुनि सु, ताको ही भाखन वैराग ॥
जग हानि ब्रह्म प्राप्ति, सो है मोक्षको रूप ।
ताकी चाह मुमुक्षता सुभाखत मुनिवर भूप॥१०॥
सम दम श्रद्धा तीतिक्षा अरु समाधान उपाम ।
सम्पद साधन इक भने, भिन्न कहे पट नाम ॥

विषयतें मन रोके ताको सम जानिये।
इन्द्रिय सब रुक जावे, दम ताको मानिये ॥११॥
विश्वास वेद गुरु वचनमें, यह श्रद्धा को रुप।
विक्षेप मन रुक जावै, सो समाधान स्वरूप ॥
सुख दुःख सम लेखि हिये हरदम ब्रह्म विचार।
ताको त्यागि कहत है, सुतीतिक्षा प्रकार ॥१२॥

टीका—वेदांत ग्रंथन विषे चार अनुबंध होवै है, जा अनुबंधकूं जानिके जिज्ञासु वेदांत ग्रंथ विषे प्रवृत होवै. औता अनुबंधकूंजाने विना प्रवृत होवै नहीं इस हेतु चारि अनुबंध कहते हैं, ताके नाम यह अधिकारी, सम्बंध, विषय, औ प्रयोजन, ये चार अनुबंध कहिये है, तिन में चतुष्ट, साधन सहित अधिकारी का वर्णन,—अंतःकरण में तीन दोष होवै है, मल विक्षेप आवृण, तामें निष्काम कर्मतें मल दोषकी निवृत्ति होति है, औ उपास्ना से विक्षेप दोष की निवृति होति है, और आवृण नाम स्वरूप के अज्ञान का है, सो अज्ञान की

निवृत्ति, स्वरूप के ज्ञान न होति है, और जिस पुरुषने निष्काम कर्म अरु उपासना करके, मल दोष औ विक्षेप दोषकी निवृत्ति करि है, और अज्ञान कहिये स्वरूपका आवरण आके चित में होवै, और चार साधन संयुक्त होवै, सो पुरुष कू अधिकारी कहिये है, ता अधिकारी के चारि साधन यह विवेक वैराग मुमुक्षुता औ षट सम्पत्ति-तामें विवेक लक्षण-यह आत्मा अविनाश कहिये नाश रहित है, औ जगत् आत्मा न प्रतिकूल कहावै नाम विनाश कहिये नाशवान् है, ऐसो जो ज्ञान है ता कू विवेक जानमौं, सो विवेक सकल साधनों क मूल कहिये बीज रूप है, काहतें जू विवेक होवै तू वैराग्य आदिक उत्तर साधन होते हैं, और विवेक नहीं होवै तो उत्तर साधन भी होवै नहीं याते वैराग मुमुक्षुता षट संपति इसका हेतु विवेक है, और चउद' भुवन जो भूर्लोक भुवर्लोक, स्वर्लोक-महर्लोक, जनलोक, तपलोक औ सत्यलोक य सात लोक ऊपर क हैं औ नीच क, अतल, सुतल

वेतल, पाताल, रसातल, महातल, औ तलातल ये चउद: भुवन देह के भीतर के और बाहिर ब्रह्माण्ड के है ताके विषे अनंत प्रकारके भोग है, ता भोगनविषे रंचकहु भीराग कहिये इच्छा होवै नहीं, ताकूं जो ज्ञानवान मुनिजन सो वैराग कहने हैं, और जगत् की हानि कहिये निवृति औ ब्रह्म की प्राप्ति सो मोक्ष का रूप है, औ ता मोक्ष की जो चाहना सो मुमुक्षताका स्वरूप मुनि जनों के आचार्य कहत हैं, और चार साधन विषे जो षट संपति कहि आये ताका वर्णन, सम दम श्रद्धा, तीतिक्षा, समाधान अरु उपरामता ये छः नाम षट संपति एक साधन के कहिये है, अधीक नहीं साधन, सो षट नाम का लक्षण, पृथक् पृथक् सुनिये–सम कहिये शब्द सपर्ष रूप रस और गंध ये पाँच विषयन तें मन कूं रोकनाँ औ दम कहिये सो पाँच विषयन के स्वाद में श्रोत्र त्वचा चक्षु जीह्वा, और घ्राण ये पाँचों ज्ञान इन्द्रियन कूं रोकनाँ, और श्रद्धा कहिये वेदांत शास्त्र विषे औ गुरु के वाक्य

विप विश्वास रखनौं, और समाधान कहियें—जो मन विषे राग द्वेश होवै, सो राग द्वेश में इया और जग का होना है, ताकुं विक्षेप कहे है ऐसे विक्षेप वाले मन कूं जो रोका जावै सोई समाधान का स्वरूप है, और तीतिक्षा कहिय, किसी समय सुख होवै अथवा दुःख होवै, ताकुं सहन करनौं और कृत्रिकी ममता करके निरंतर ब्रह्म विचार म रहनौं ताको त्यागि जन तीतिक्षा मकार कहते हैं अरु उपरामता आगे कहेंगे ॥ ८ ॥ ६ ॥ १० ॥ ११ । १२ ॥

तीय पूत धनाग ॥ दोहा ॥

धन दारा सुत लक्ष्मी, मोह सुख ससार।
यातें वे चाहत सकल देव दइत कीनार ॥१३॥
देव दानव मुनि मानवि, सगरे नारि नेह।
सहित नये सूर वीर, सूदरितऐ मनेह ॥१४॥

स्त्रीयाग ॥ चौपाई ॥

नारि सुन्दर अङ्ग रूपारी।
पियके मन भाने प्यारी ॥

कदी होय कुरूप तनकारी।
तो भी घर सोहावना हारी ॥१५॥
जात जमात कुटंब सोहावै।
पुत परिवार भले नीपावै ॥
ध्रुव प्रहलाद भगीरथ जैसे।
नारि नर नीवावत ऐसे ॥१६॥
बिन तिरिया जो विधूर होवै।
तौ नात जात सकल बिगोवै॥
यातें सब कोइ नारि लावै।
संसार सार सुख भोगावै ॥१७॥
इस हेतु नारि सब कूं प्यारी।
दमति पूनि अमृत वारी॥
नाहिं नाहिं सो गर भारी।
तजे विवेकी हिये विचारी ॥१८॥

॥ दोहा ॥

मोहे दानव देवता, पुनि मुनि अरु नर्प ।
ताकू भरखें भामनी, महा विषधर सर्प ॥१६॥

॥ चौपाई ॥

और अघोक दूर्गुण नारिके ।
बोलत वैन सुमोह यारिके ॥
प्रीत जनावे कपट करीके ।
सो दु ख दानी पेट भरि के ॥२०॥
नारी वेश्या अथवा पर की ।
तीजी नरक निशानी घर की ॥
वेश्या राखे यारी जर की ।
पर की लाज गुमाव नरकी ॥२१॥
अमि वैन म घरकी भारे ।
वस्त्र भूषण कछु नहीं हमारे॥

दुर्बल दिन घर नव संमारे।
धन धान्य कुमारग बिगारे ॥२२॥
ऐसे नारी करत खुवारी।
दिन रैनबैनहियअग्निभारी॥
ताकूं सूर सके नव ठारी।
विवेकी सोइ तजै हिचारी ॥२३॥

॥ दोहा ॥

सूरे सूके तरण कूं, नारी बारत बैन।
सूघर नरसो बचत है, त्यागी पावे चैन ॥२४॥

पुत्र दुःख ॥ दोहा ॥

सूत सदा दुःख देत है, मरण जन्म और गर्भ।
यातें शांणे चहत यह, भगवत भलो अगर्भ ॥२५॥

॥ चौपाई ॥

जौ लौ नारि अगभ होय जाके।
तौलौ बंध्या दुःखइक ताके॥

और नारी गर्भ धरे जब याके ।
तब अनेक दु ख उपजे वाके ॥२६॥
गर्भ गीरनकी चिंता मनमें ।
दाजे नरनारि दोउ तनमें ॥
खटका मनमें रहे जतनमें ।
नौमास बीते यह चिंतनमें ॥२७॥
दस मास पुत विहाने जबहीं ।
अधिक शकट भोगे तबहीं ॥
ऐसा भारी शकट न कबहीं ।
रामरहिम यादे तब सबहीं ॥२८॥
पुत जन्मे सकरान बटवाई ।
घन वसन खेरात दिलवाइ ॥
शीशु धीरा दांतकी आई ।
मये उदाम करे शोकाई ॥२६॥

दांत रोगसे बाल मरत है।
शीतलातें सु पूनि डरत है॥
यातें शीतला भक्ति करत है।
निज देवकूं हिये विसरत है॥३०॥
पुत हेत दुःख अनंत सहिके।
आगर आस यह सुख हमहीके॥
ऐसी उमेद मन सबहीके।
शीशु पेंट रहे है जबही के॥३१॥
सौंपुत भी जो शाणां होवे।
तो बुद्धियन कूं दृष्टितें जोवे॥
भूले चरण कबहूँ नही छोवे।
जुछोवे तु अपर विगोवे॥३२॥
होवे कपूत गालि दे ऐसी।
अंग भरे इंगारे तैंसी॥

फेर तीय सिखावे कैसी ।
बुढियन कू नीकारन जैसी ॥२३॥
मात पिता घर बाहर निकारे ।
हाथ पाउ दिये तन सारे ॥
खान पान कछु नहीं समारे ।
बुढ़िये रोवत घरघर ठारे ॥२४॥
अथवा पूत युवा मर जावे ।
तोभी दु खबुढियन कू आवे ॥
बाल रहा दीठी न जावे ।
ऐसे दु ख पुत सदा उपावे ॥२५॥

धन निर्धन दुख ॥ दोहा ॥

निर्धन दु खिया जन्म इक है धनी जन्म दुःखदोन
सो मायाकी जाल तें, अँधे सूग्त कोन ॥२६॥

॥ चौपाई ॥

धन खरचावत कामनी कथ्या ।
खावै अंग खर्चावै मिथ्या ॥
करे न आगे हालकी तथ्या ।
युं बुढपने दुःख भोगै जथ्या ॥३७॥
मैन भगने सो बुरा बोले ।
नित्य कलेजे बालक फोले ॥
सो निरधन तरणेके तोले ।
और निरधन जन परघर डोले ॥३८॥
धनी भी धनतें दुःखियारे ।
लोभ अङ्ग चिंता मनभारे ॥
खरचत घरमें चौर लुटारे ।
मरे तउ प्रेत सर्प जुनधारे ॥३६॥

॥ दोहा ॥

यु नारि धन पुत की, तजे विवेकी चाह ।
त्याग और वरागमें, जाकू भली उच्छाह ॥४०॥
ताको मूल तीय जतन, और गुरु पद प्रीत ।
पूनि विषय उपरामता, सु अधिकार की रीत ॥४१॥

उपरामता लच्चण ॥ दोहा ॥

साधन कर्म सहित को, लहै न हिरदे नाम ।
तीय त्याग अन्तर घणो, सोइ लच्चण उपराम ॥४२॥
येचव साधन सिद्ध करि, वास्ना रहे न गध ।
तब अधिकारी होत यह, चहे ग्रथ सम्बध ॥४३॥

टीका—कर्म नाम यज्ञका है, ताके साधन को पुत्र धन है यामें सो आत्म ज्ञानका जिज्ञासु होय सो कर्म करने का, संकल्प भी करे नहीं, काहेतें जो निष्काम कर्म है सो ता अन्तःकरण की शुद्धि के हेतु है, औ सकाम कर्म आगे जन्म क हेतु है,

सो जिज्ञासु को पूर्व जन्म विषे अंतःकरण की शुद्धि तो हो गई है, और आगे जन्म की इच्छा नहीं, याते आत्मज्ञान का जिज्ञासु कर्म करनेका नाम लहे नहीं, औ तीय नाम स्त्री कू देखते ही दूर भाग जावै, सो उपरामता लक्षण कहिये है (शंका) सम्पूर्ण कर्मका त्याग करनेसे जिज्ञासु को दोष लगे कि नहीं (उत्तर) कर्म दो प्रकार के हैं एक विहित और एक निषिद्ध तिनमें विहित कर्म चार प्रकार के हैं नित्य नैमित्त काम्य औ प्रायश्चित्त जो संध्या स्नानादिक सो नित्य कर्म कहिये हैं सूर्यादि ग्रहण औ श्राद्ध तथा छ प्रकार के वृद्ध जाका विधान नहीं उत्थान विधान जैसे आश्रम वृद्ध १ अवस्था वृद्ध २ जाति वृद्ध ३ विद्या वृद्ध ४ धर्म वृद्ध ५ औ ज्ञान वृद्ध ६ ये छ पूर्व पूर्वसे उत्तर उत्तर उत्तम है ताके आगमन तें नमस्कार करे जाके नहीं करने से पाप होवे है औ करने से पुण्य होवे नहीं ताको नैमित्त कर्म कहे हैं औ जैसे कार् याज्ञवृष्टि काम को है औ स्वर्ग कामको सोमयज्ञ अग्निहोत्रादिक है ताको

काम्य कर्म कहे है और पापनाशकूं जाका विधानसो प्रायश्चित्त कर्म है ये सारे प्रवृत्ति रूप है यातें ये सर्वका त्याग करे औ निषिद्ध पाप कर्म तो जिज्ञासु करता है भी नहीं इस रीति से दो प्रकार के कर्म है, तीनके नहीं, औ स्वभाव सिद्ध करना सो उदासीन क्रिया को कर्म नहीं कहिये है। ये चारि साधन परिपाक अर्थात विषय वासना की गंधभी रहे नहीं, तब यह ग्रंथका अधिकारी बनै है, यातें ग्रंथ प्रथम के सम्बंध की बात करे ॥४२॥४३॥

सम्बंध विषय प्रयोजन ॥ रोला छंद ॥

स्थापक और स्थाप्यता, ग्रंथ ज्ञान सम्बन्ध।
प्राप्य प्रापकता कहे, फल जिज्ञासु को बंध॥
जीव ब्रह्म रूप जानिये, ता विषय कहत वेद।
जो वेदांत अज्ञात है, सो मानत मन भेद॥
माया उपाधि ईशकी, जीव अविद्या मान।
दोन उपाधि बाध करहु, ब्रह्म चेतन हीं मान॥

परम् स्वरूप की प्रापति. प्रयोजन पहिचान।
जगत् समूल अनर्थ लखि, करहु ताकी अतिहान॥

॥ चौपाई ॥

अनुबंध सोइ पूरं कीनैं,
अपरकहतगुरुलक्षणसुचिनैं ।
ब्रह्म निष्ट ब्रह्म रूप ही जानैं,
त्यागी भिन्न भाव गुरु मानैं ॥४६॥

टीका—ग्रंथ का और विषय का स्थापक स्थाप्यता भाव रूप सम्बंध है, ग्रंथ स्थापक औ ब्रह्म विषय स्थाप्य है, जो स्थापन करने वाला होवै, ताको स्थापक जानै औजो स्थापन होने वाला होवै, ताको स्थाप्य जानै, ग्रंथ प्राप्त करने वाला है, औ ज्ञान द्वारा ब्रह्म प्राप्त होने वाला है, फल का औ जिज्ञासु का प्राप्य प्रापकता भाव रूप सम्बंध है, फल प्राप्य है औ जिज्ञासु प्रापक है, जो प्राप्त होवै सो प्राप्य कहिये है, औजाकूंप्राप्त होवै, ताकूं प्रापक

कहिये है, जिज्ञासु का औ विचार का कर्त्ता औ कर्तव्य भाव रूप सम्बंध है, जिज्ञासु कर्त्ता है और विचार कर्तव्य है, जो करनें वाला ताको कर्त्ता कहे है, औ जो करनें योग्य होवै सो कर्तव्य कहे है ग्रंथ का औ ज्ञान का जन्य जनक भाव रूप सम्बन्ध है, विचार द्वारा ग्रंथ ज्ञान का जनक है, औ ज्ञान जन्य है, जो उत्पत्तिकरे सो जनक है औ जा की उत्पत्ति होवै सो जन्य है, ऐसे और भी सम्बन्ध जानें-अब विषय का स्वरूप यह, जीव ब्रह्मसें न्यारा नहीं, किन्तु ब्रह्म रूप ही जीव है, जैसें शुद्ध सुवर्ण के विषे अन्य धातु मिलनें स हेम अन्य धातु रूप नहीं, कींचा सोधन करने से कञ्चन शुद्ध ही है, तैसें जीव ब्रह्म रूप ही है, यह वेदांत का सिद्धांत है, परन्तु जा पुरुष न वेदांत नहीं विचारा है, ता पुरुष अपने मन सें जीव ब्रह्म का भेद जानता है, सो बनें नहीं काहेतें ? चैतन का माया उपाधि सहित ईश्वर कहे है, और अविद्या उपाधि सहित चैतन कूं जीव कहे है, तामें ईश्वर

मूक्त है और जीव वंधा है। (शंका) एक चैतन विषे दो भेद, ईश्वर मूक्त औ जीव बँधा सो कैसें मांने ? (समाधान) ईश्वरकी उपाधि जो माया है, सो माया शुद्ध सत्वगुणी है, यातें शुद्ध सत्व गुण के प्रभावतें, ईश्वरके विषे, सर्वज्ञता-सर्वशक्ति-अंतरयामीत्व-एकत्व-शुद्ध-अविनाशित्व-असंगत्व-और नित्य मूक्त ये आठ लक्षण है, यातें ईश्वर मूक्त है, औ जीव की उपाधि जो अविद्या है, सो अविद्या मलीन सत्वगुणी है, सो मलीन सत्वगुण के प्रभाव से जीव के विषे, अल्पज्ञता-अल्पशक्ति-अल्पवुद्धि-नानात्व-क्लेश युक्त-विनाशि-अविद्यासंगी और बंध ये आठ लक्षण करके जीवबंद्ध मोक्षवाला कहिये है, इस रीति सें ईश्वर मुक्त अरु जीव बंधा है, और माया उपाधि सहित जो ईश्वर और अविद्या उपाधि सहित जो जीव है, सो दोनों उपाधि वाध करके नईश्वर है और न जीव है कैवल्य चैतन्य ब्रह्मही है, सो ब्रह्म की प्राप्तिके निमित गुरु द्वारा ग्रंथका प्रयोजन

यह, जो चिदात्म अनहद् परम आनन्द स्वरूप है, ताकी प्राप्ति करनें रूप और जगत समूल अनर्थ है, ताकी निवृति करनें रूप यह ग्रंथ का प्रयोजन है, और परम प्रयोजन मोक्ष है सो मोक्ष गुरु कृपा औ ग्रंथ पठन से ज्ञान द्वारा प्राप्त होता है और ज्ञान अवांतर प्रयोजन है, परम प्रयोजन ज्ञान नहीं, काहेत ? जाके विषे पुरुष की अभिलाषा होवे ता कू परम प्रयोजन कहिये है, औ ता कू पुरुषार्थ भी कहिये है, सो अभिलाषा दुःख की निवृतिकरना औ सुखकी प्राप्ति करनां सब पुरुषन कू होवे है, सोई मोक्षका स्वरूप है, यातें परम प्रयोजन मोक्ष है, और ज्ञान है नहीं, काहेतें ! सुखकी प्राप्ति औ दुःखकी निवृतिका साधन तो ज्ञान है परंतु सुख की प्राप्ति वा दुःख की निवृति रूप ज्ञान नहीं यातें अवांतर प्रयोजन ज्ञान है, जा वस्तु द्वारा परम प्रयोजन की प्राप्ति होवे, सो अवांतर प्रयोजन कहिये है, ऐसा ज्ञान है, काहे त ? ग्रंथ कर के ज्ञान द्वारा मुक्तिरूप परम प्रयोजन

की प्राप्ति होवै है, यातें ज्ञान अवांतर प्रयोजन है, और जगत् समूल कहिये जो अविद्या सो अविद्या जगत का मूल है, यातें अविद्या सहित जगत् की निवृति करनां, ये चारि अनुबंध संपूर्ण कहि आये, अब गुरु के लक्षण कहत हैं, ताकूं भली प्रकारसें जां नै, भोग आसक्ति रहित औ स्वरूप में निष्ठा वाला होवै, ता कूं ब्रह्म रूप जांनि के भेद भाव त्याग करके गुरुमानै ॥४४॥४५॥४६॥

श्री गुरू लक्षण ॥ दोहा ॥

लोभी लंपट अरुलालची, दूर व्यसनि बकवाद ।
और भी कोई दुर्गुणी, तजेता मुख प्रसाद ॥४७॥
शील संतुष्ट सावधान, वाणी वेद समान ।
ताकूं गुरु मानि के, सेवा करे सुजान ॥४८॥

टीका—लोभ वाला कामी औ सेवा का लालची होवै, अथवा व्यसन के वश औ बकवादी तथा अन्य दूर गुणवाला सो ज्ञानवान होवै तो

भी ताके शरण में ब्रह्म विद्या पढ़ना अनुचित है काहेतें ? जो ज्ञानवान लोभी होगा सो सेवाका लालची होगा याते सत्य बोध के अभाव से जिज्ञासु को ज्ञान होवै नहीं औ लपट जो कामी ताका मन चंचल बहिरमुख्य है तिस तें भी सदोष देश वनै नहीं औ जो गाजाआदिक व्यसनी बकवादी होगा सो भी गुरु योग्य नहीं और दूर गणी कहिये मद शासन में विपरीत गुण वाला होवै जैसे वाम संप्रदाय के है सो भी बोधके योग्य नहीं याते ऐसे का त्याग करके जो सद्गुणी होवै ताके शरण जावै सो आगे दिखे शील कहिये सुलक्षण औ संतुष्ट कहिये लोभ तृष्णा रहित और सावधान कहिये प्रवृत्ति फंदे में भी कर्ता अकर्ता जो ब्रह्मनिष्ठ होवै ता। सत्य वक्ता की वाणी वेद समान जानिके सुजान कहिये विवेकी जिज्ञासु होवै सो ऐसे संतरू गुरु स्वामि के तन मन धन औ वचन से ही सेवा करे सो ज्ञानिक शीलआदिक सुलक्षण यह निराशं १ निर्भ्रम २ निसामिक ३ निर्विकार४

॥ १ ॥ विचार—निर्मोहिक १ निर्बन्ध २ निर्हन्सक ३ निर्वाण४ ॥ २ ॥ विवेक-सावधान१ सर्वङ्गी२ सारगहि३ संतोषि४ ॥ ३ ॥ परम संतोषि—अयाचक१ अमानी२ अपक्षिक ३ स्थिर ४ ॥ ४ ॥ सहज स्वभाव-निष्प्रपंच१ निहतरङ्ग२ निर्लोभ ३ निष्कर्म ४ ॥ ५ ॥ निरवैरता—सुहृद १ सुखदाई २ सुमति३ शीतलताई४ ॥ ६ ॥ सुन्य लक्षण शीलवंत १ सबुद्धि२ सत्यवादि३ ध्यान समाधि४ ॥ ७ ॥ ये अठाइस लक्षण संपन्न की सेवा करे ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

शिष्य लक्षण ॥ दोहा ॥

तन मन धन वाणी अर्पी, सेवा करे सुजान ।
दोष कबहुँ अरपे नहीं, जो निज चाह कल्यान॥४९॥
इस विध सेवा करत भी, जब प्रसन्नगुरू होय ।
करे विनय कर जोरि के, प्रभू कृपा कछु मोय ॥५०॥

टीका—तन मन धन औ वचन ये सब गुरुकूं अर्पण करके जो विवेकी पुरुष होवैसो गुरू की सेवा करे और गुरू शिष्यकी परिक्षा के वास्ते दूराचरण

करे तो जिज्ञासु श्रद्धाकी हानि करे नहीं औ गुरुकू अथवा अन्य कुम्मी पुराचरम प्रगट करे नहीं तन अरपण कहिये तन से यथार्थ सेवा करे और मन अर्पण कहिये जैसे गुरु प्रसन्न होवै एस मनमें विचार करके सेवा करे औ धन कहिये स्त्री पुत्र ग्राम पशु धान्य ये सम्पूर्ण गुरु कू चढ़ाइ देवै जो गुरु त्यागि होवै सो तो नहीं स्वीकार करेगा याते सर्व को त्याग करके त्यागी गुरु के शरण रहै सो बातां मति अनुसार विचारसागर प्रथममें है और वचन अर्पण गुरु प्रत्यउर्धक वाणी बोले नहीं इस विधि गुरु मरयाद वर्तन करते हुए भी जब गुरु की प्रसन्नता अपने पर देखै तब अपना अभिप्राय गुरु से कहै और गुरु बोले नहीं तो फर प्रश्न करे नहीं ऐसा अधिकारी आत्मज्ञान प्राप्त करेगा ॥४६॥५०॥

श्री गुरु स्वाच ॥ चौपाई ॥

गुरु बोले शिष्यकी सुणिवाणी।
हुवा अधिकारी लखि प्रमाणी ॥

अब तोको मैं तत्व सुनावहूं ।
आत्म अनात्म भिन्न जनावहूं ॥५१॥

स्थूल देह प्रकार ॥ दोहा ॥

महा प्रलय के अन्तमें, प्रकृति अहंकार ।
तिनतें तिनमें पंचभूत भये, ताका यह विस्तार॥५२॥

टीका—श्री गुरु ने शिष्यकूं अधिकारी हुवा जान्या याते गुरु शिष्य प्रत्ये कहता हुवा कि अब मैं तोकूं तत्व सुनाता हूँ जाते आत्मज्ञान होवै इस हेतु आत्मा और अनात्मा वर्णन करके भिन्न भिन्न जनाता हूँ जो पूर्व सृष्टि का महा प्रलय होवै उस कालकं प्रधान पुरुष कहे हैं औ ताका जो अन्त भाग सो उत्तर सृष्टि का आदि समय है ताकूं प्रकृति वा अहंकार कहे है सो अहंकार से अपंचिकृत महा पंचभूत होवै है सो भूतनतें पंचिकृत महापंच भूत होवे है ताके नाम आकाश वायु तेज जल औ पृथ्वी ये पांच भूतके पचीस तत्व हुइ के स्थूल देह बने है सो यह ॥५२॥

स्थूल देह के तत्व ॥ कवित्त ॥

पंचिकृत पंच भूत नभ वायु तेज वारी।
पृथ्वी पचम ताके तत्व यह जानि हू ॥
अस्थि मांस त्वचा नाड़ी,रोम पांच अन यह।
शुक्र शोण लार मूत्र,स्वेद वारीमानि हू॥
चलन वलन धावन, सङ्कुचन प्रसार।
क्षुधा तृषा आलस्य निद्रा,कांती वायु वानि हू॥
शिर कंठ हृदय उदर कटी पांच नभ के।
पंच भूतन के तत्व, पचीस बखानि हू ॥५३॥

टीका—पंचिकृत महापंचभूत,—आकाश, वायु, तेज, जल औ पृथ्वी, ये पांचके पचीस तत्व यह,—अस्थि कहिये हड्डी और मांस, औ त्वचा कहिये चमड़ी, औ नाड़ी कहिये नस औ रोम कहिये रोमांच वा केस ये पांच तत्व पृथ्वीके हैं, शुक्र कहिये वीर्य, शोणित कहिये रुधिर, लार कहिये पेटा, मूत्र कहिये पेशाब, स्वेद कहिये पसीना ये पांच तत्व वारि कहिये

जलके है–क्षुधा कहिये भूख, तृषा कहिये पियास, आलस्य कहिये सुस्ति, निद्रा कहिये उंघ, कान्ति कहिये तेज ये पांच तत्व तेजके हैं सो तेजका नाम वानि है औ चलन कहिये गमन, औवलन कहिये मुरडना औ धावन कहिये दौड़ना और प्रसारन कहिये फैलना औ संकूचन कहिये संकूचना ये पांच तत्त्व वायुके हैं और आकाशके पांच तत्त्व शिर कहिये शिराकाश और कंठ कहिये कंठाकाश और हृदय कहिये हृदयाकाश और उदर कहिये उदराकाश औ कटी कहिये कटाकाश सो आकाश नाम पोलका है ये पांच भूतके पचीस तत्त्वका यह कोष्टक—

आकाशके	वायुके	तेजके	जलके	पृथ्वीके
शिराकाश	चलन	क्षुधा	शुक्र	अस्थि
कंठाकाश	वलन	तृषा	शोणित	मांस
हृदयाकाश	धावन	आलस्य	लार	त्वचा
उदराकाश	प्रसारन	निद्रा	मूत्र	नाडी
कटाकाश	सकूचन	कान्ती	स्वेद	रोम

वर्णन—स्थूल देहमें आकाश भूतके तत्त्व शिराकाश नाम शिरकी पोल औ कंठाकाश कंठकी पोल औ हृदयाकाश हृदयकी पोल उदराकाश उदरकी पोल और कटाकाश कमरकी पोल ये पांच तत्त्व आकाश भूतके स्थूल देहमें होनेसे स्थूल देहसो आकाश भूतका है, "चलन कहिये गमन सो वायुसे होवै है वलन कहिये अवैव्यका मुरकना सो वायुसे होवै है धावन कहिये दौड़ना वायुसे होवै है, प्रसारण कहिये पसार करना वायुसे होवै है, संकुचन नाम आकुचन कहिये संकुचना सो वायुसे होवै है—ये पांच तत्त्व वायु भूतके स्थूल देहमें होनेसे स्थूल देह वायु भूतका है। क्षुधा कहिये भूख सो अग्निसे होवै है, अग्नि नाम तेजका है। तृषा कहिये पियास गरमीसे होवै है, सो गरमी नाम तेजका है। आलस्य कहिये सुषुप्ति ग्रीषम ऋतुमें होवै है, सो ग्रीषम नाम तेजका है, निद्रा कहिये ऊंघ सो आलस्यसे होवै है। कान्ती कहिये तेज अथवा दृष्टिधारी सो तेजसे होवै है—ये पांच

तत्व तेज भूतके स्थूल देहमें होनेसे स्थूल देह तेज भूतका है। शुक्र कहिये वीर्य जल रूप है, शोणित कहिये रुधीर जल रूप है, लार कहिये थेटा अथवा कफ सो जल रूप है, मूत्र कहिये पेशाब जल रूप है, स्वेद कहिये पसीना जल रूप है—ये पांच तत्व जल भूतके स्थूल देहमें होनेसे स्थूल देह जल भूतका है, अस्थि कहिये हड्डी पृथ्वी रूप है, मांस कहिये आमिष पृथ्वी रूप है, त्वचा कहिये चमडी पृथ्वी रूप है, नाडी कहिये नस।पृथ्वी रूप है, रोम कहिये केस पृथ्वी रूप है—ये पांच तत्व पृथ्वी भूतके स्थूल देहमें होनेसे स्थूल देह पृथ्वी भूतका है। स रीतिसे पंचिकृत पंच भूतके पचीस तत्वसे स्थूल देह वने हैं याते स्थूल देह पंच भूत रूप सो पंचिकृत भूतनका है सो स्थूल देहकी तनमात्रा यह ॥५३॥

तन मात्रा ॥ दोहा ॥

ताकी यह तनमात्रा, अधीक न्युन मिलि भाग।
इक दूजे माहीं करण, मनुष्य देह वड भाग॥५४

वर्णन—स्थूल देहमें आकाश भूतके तत्व शिराकाश नाम शिरकी पोल औ कंठाकाश कंठकी पोल औ हृदयाकाश हृदयकी पोल उदराकाश उदरकी पोल और कटाकाश कमरकी पोल ये पांच तत्व आकाश भूतक स्थूल देहमें होनेसे स्थूल देहसो आकाश भूतका है, "चलन कहिये गमन सो वायुसे होवै है वलन कहिये अंगोंका मुरकना सो वायुसे होवै है धावन कहिये दौड़ना वायुसे होवै है, प्रसारण कहिये पसार करना वायुसे होवै है, संकुचन नाम आकुंचन कहिये संकुचना सो वायुसे होवै है—ये पांच तत्व वायु भूतके स्थूल देहमें होनेसे स्थूल देह वायु भूतका है। क्षुधा कहिये भूख सो अग्निसे होवै है, अग्नि नाम तेजका है। तृषा कहिये पियास गरमीसे होवै है, सो गरमी नाम तेजका है। आलस्य कहिये सुषुप्ति ग्रीषम ऋतुमें होवै है, सो ग्रीषम नाम तेजका है, निद्रा कहिये ऊंघ सो आलस्यसे होवै है। कान्ती कहिये तेज अथवा हुसियारी सो तेजसे होवै है—ये पांच

तत्व तेज भूतके स्थूल देहमें होनेसे स्थूल देह तेज भूतका है । शुक्र कहिये वीर्य जल रूप है, शोणित कहिये रुधीर जल रूप है, लार कहिये चेटा अथवा कफ सो जल रूप है, मूत्र कहिये पेशाव जल रूप है, स्वेद कहिये पसीना जल रूप है—ये पांच तत्व जल भूतके स्थूल देहमें होनेसे स्थूल देह जल भूतका है, अस्थि कहिये हड्डी पृथ्वी रूप है, मांस कहिये आमिष पृथ्वी रूप है, त्वचा कहिये चमडी पृथ्वी रूप है, नाडी कहिये नस।पृथ्वी रूप है, रोम कहिये केस पृथ्वी रूप है—ये पांच तत्व पृथ्वी भूतके स्थूल देहमें होनेसे स्थूल देह पृथ्वी भूतका है। स रीतिसे पंचिकृत पंच भूतके पचीस तत्वसे स्थूल देह बने हैं याते स्थूल देह पंच भूत रूप सो पंचिकृत भूतनका है सो स्थूल देहकी तनमात्रा यह ॥५३॥

तन मात्रा ॥ दोहा ॥

ताकी यह तनमात्रा, अधीक न्युन मिलि भाग ।
इक दूजे माहीं करण, मनुष्य देह बड भाग ॥५४॥

विधि ॥ सवैया ॥

सोइ देह तन मात्र विधि यह ।
पांच करण पद कहे याके ॥
एक भूतके समदोभाग करी ।
कुशल, इक, अंश, चार, दूजाके ।
ऐसे करे भाग सर्व भूतन के ।
जोहोवे जाका सोइ देवेताके ॥
मुख्य कुशल भाग अपनहुरासे ।
अन्य भूतनके अंश मिलाके ॥५५॥

टीका—पूर्व जो स्थूल देह कहि आये ताकी यह तनमात्रा अर्थात् तत्त्वके अधिक न्युन भाग करके एक दूसरे भूतनकूं आपस में दिये जावे हैं ताकू करण कहे हैं सो करण हुए के जो मनुष्य का स्थूल देह सो बड़ा दुर्लभ प्राप्त होवे है काहेतें जो देव शरीर है सो किन्तु पुण्य भोगने के वास्ते

होवै है और पंचि तीर्थकादिक देह सो पाप भोगने के वास्ते होवै है परन्तु मोक्ष के वास्ते नहीं औ मनुष्य देह एक ही मोक्षका द्वार है यातैं मनुष्य देह श्रेष्ठ कहिये है सो मनुष्य देह पुण्य औ पाप कर्मका मिश्रित उत्पन्न होवै है यातें सुख औ दुःख सब भोगै है औ देव शरीर यद्यपि पुण्य के कहे है तथापि किंतु पुण्य कर्म के देव शरीर नहीं काहेतें ? जो देव शरीर केवल पुण्यके होवै तौ देवताओं को इर्षा अरु भय हुई नहीं चाहिये यातें देव शरीर अधिक पुण्य औ न्यून पाप का मिश्रित है और पशु आदिकन का देह अधिक पाप और न्यून पुण्य का मिश्रित है यातें अधिक दुःख औ मैथुनादिक सुख भोगै है इस रीतिसे मोक्षका द्वार मनुष्य देह सिद्ध है सो देह की तन मात्रा विधि यह एक भूतै के दो भाग समान करके एक भाग ज्युंकात्युं कुशल रहे और दूसरे एक भाग के चार अंश करे इस रीति से सर्व भूतन के भाग करे औ जो भाग जा भूत के योग्य होवै सोइ भाग ता

मूतक देखे थी जो कुशक भाग रहे ताकू मुख्य भाग कहे है सो मुख्य भाग आप रख लेवे और अन्य भूतन के एक एक अंश लेकर के अपने मुख्य भाग में मिला देवे ताकू पंचिकरण कहे हैं ।

सोतन मात्राका यह कोष्टक

पूर्व दिशा

उत्तर दिशा

पंचभूत	पृथ्वी	जल	तेज	वायु	आकाश
पृथ्वी	अस्थि ८	शोणित २	आलस्य २	संकुचन २	घटाकाश २
जल	मांस २	शुक्र ८	कान्ती २	चलन २	महाकाश २
तेज	नाड़ी २	मूत्र २	क्षुधा ८	वलन २	छायाकाश २
वायु	त्वचा २	स्वेद २	तृषा २	धावन ८	मठाकाश २
आकाश	रोम २	लार २	निद्रा २	प्रसारण २	चिदाकाश ८

दक्षिण दिशा

पश्चिम दिशा

वर्णन—यह कोष्टक में सारे तत्व उत्तर दिशा भूतन के हैं परन्तु पूर्व दिशा भूतन के साथ जो तत्व मिलते हैं सो तत्व पूर्व दिशा भूतन के कहे

जाते हैं सो दो दो आने के है और जो आठ आने के हैं सो भागकूं मुख्य भाग कहे हैं ताकूं जो जाका मुख्य होवे सो अपना अपना स्व लेवै और दो दो अपने के चार भाग कूं एक एक भाग अन्य भूतनकूं दे देवै ज्युं पृथ्वी का मुख्य भाग अस्थि सो पृथ्वी आप रखती है काहेतें ? जैसे पृथ्वी कठिन है तैसे अस्थि नाम हड्डी भी कठिन है याते पृथ्वी अपना मुख्य भाग अस्थि सो आप रखती है और मांस जलकूं दिया काहेते ? जलकी नाईं मांस द्रवीभूत है याते जलका है परन्तु पृथ्वी की साथ मिलता हैं याते मांस पृथ्वी का बोलते हैं औ नाड़ी तेजकूं दीनी काहेते ? नाड़ी तें जौर कीं प्रिन्ता होवै है याते नाड़ी तेज की है परन्तु पृथ्वी के साथ मिलती हैं याते नाड़ी पृथ्वी की कहे हैं औ त्वचा वायुकूं दीनी काहेतें ? त्वचा वायु से होवै हैं याते वायु की है परन्तु पृथ्वी की साथ त्वचा मिलती हैं याते पृथ्वी की कहे हैं, औ रोम आकाश कूं दिया काहेतें ? जैसे अकाशका छेदन

करनेसे आकाश क़ु दुःख नहीं तैसे रोम कहिये केशकू छेदन करनेसे केशकू भी दुःख नहीं यातें रोम आकाशका है परन्तु पृथ्वीके साथ मिलता है यातें रोम पृथ्वीका कहे है और जलका मुख्य भाग शुक सो जल रखता है काहेतें ? जैसे जलतें वनस्पति की उत्पत्ति होती है तैसे शुक नाम वीर्य तें चर प्राणि की उत्पत्ति होती है यातें जलका मुख्य भाग शुक है सो जल रखता है और शोणित पृथ्वी कू दिया काहेत ? पृथ्वी के रंग समान शोणित कहिये रुधिर भी लाल रंग का है यातें शोणित पृथ्वी का है परन्तु जल के समान प्रवाहिक है यातें शोणित जलका कहे हैं औ मूत्र तेज कू दिया काहेतें ? अग्नि का उष्ण गुण मूत्र में है यातें मूत्र तेज का है परन्तु जलकी नाईं प्रवाहिक है यातें मूत्र जलका कहे है और स्वेद वायु कू दिया काहेत ? स्वेद का वायु सोषण करता है यातें स्वेद वायु का है परन्तु पसीना प्रवाहिक है यातें स्वेद जल का कहे हैं औ लार आकाश कू

दीनी काहेतें ? लार मुस्तक में होवै है यातें आकाश की है परन्तु प्रवाहिक है यातें लार जल की कहे है औ तेज का मुख्य भाग क्षुधा सो तेज रखता है काहेतें ? जाठर नें क्षुधा लगति है याते क्षुधा मुख्य भाग है सो तेज रख के आलस्य पृथ्वी कूं दानी काहेते ? आलस्य पृथ्वी के सदृश जड होने से पृथ्वी की है परन्तु गरमी से आलस्य होवै है यातें तेज की कहे हैं औ कान्ती जलकूं दीनी काहेतें ? स्नान करने से देह की कान्ती होवै है यातें जल की है परन्तु तेज नाम कान्ती का है यातें तेज की कहे हैं और तृषा वायु कूं दीना काहेतें ? तृषा नाम प्यास वायु ते लगती है यातें वायु की परन्तु गरमी करती है यातें तृषा तेज की कहे हैं औ निद्रा आकाश कूं दीनी काहेतें ? आकाश के सदृश्य निद्रा शून्य है याते आकाश की है परन्तु निद्रा गरमी तें होवै है यातें निद्रा तेज की कहे है औ धावन मुख्य भाग वायु रखता है काहेतें ? जैसे वायु का तीव्र वेग है तैसे धावन

का भी तीव्र वेग है याते धावन वायु का मुख्य भाग सो वायु रसना है और आकुंसन पृथ्वी कूं दिया काहेतें आकुंसन कहिये संकुचन का सो पृथ्वी का जड़ स्वभाव है याते आकुंचन पृथ्वी का है परंतु वायु से संकुचना होवे हैं, याते वायुका आकुंसन कहे हैं सो चलन जलकू दिया काहेतें ? चलन में जलके समान चलनेकी गति है याते चलन जलका है परंतु वायुक्षोभ करे तो गमन बनै नहीं याते चलन वायु का कहे हैं सो चलन तेजकू दिया काहेसे ? चलैम्य का मुख्य ना गरमी में होवे है याते चलन तेज का है परंतु वायु मंद होवे तो हाथ पैर चल नहीं याते चलन वायुका कहे है सो प्रसारण आकाश कूं दिया काहेतें प्रसार कहिये आकाश की नाईं चौड़ा होना याते आकाश का प्रसारण है परंतु वायु से हाथ पैर चौड़े होत है याते प्रसारण वायु का कहे हैं सो शिराकाश मुख्य भाग आकाश का सो आकाश रमनी है काहेतें ? जैसे आकाश कड़ाहाके समान गोल है तैसे शिर

भी गोल है याते आकाश अपना मुख्य भाग शिराकाश रख के कटाकाश पृथ्वी कूं दीनी काहेते ? पृथ्वी का मल रहनें का स्थान कटाकाश है, याते कटाकाश पृथ्वी की है परंतु कटाकाश पोली है याते आकाशकी कहे है और उदराकाश जल कूं दीनी काहेतें ? उदर जल का स्थान है यातें उदराकाश जल का है परन्तु पोली है यातें आकाश की उदराकाश कहे हैं औ हृद्याकाश तेज कूं दीहिन काहेतें हृदय में अग्नि रहे है याते हृद्याकाश तेज की है परन्तु पोली है याते आकाश की कहे हैं औ कंठाकाश वायु कूं दीनी काहेतें ? कंठ वायु गमन का द्वार है यातें कंठाकाश वायु की है परन्तु आकाश के सामान पोली है याते कंठाकाश आकाश की कहे है इस रीति से ये पचीस तत्व ओत पोत हुइ के जो स्थूल देह बने है सो पंचिकृत भूतन का है तहां दृष्टान्त ॥५४॥५५॥

दृष्टान्त ॥ दोहा ॥

ज्युं पंच रंगी बंगला, बनत बहु विधि भाग ।
त्युं बन्या स्थूल देह यह, तासुं राख विराग ॥५६॥

तेमिथ्यासत्यसिद्धनहीं, आत्मचैतन्य सत्यसिद्ध।
सोइआतमस्वरूपतू और सबमिथ्याप्रसिद्ध ॥५७॥

टीका—जैसे पाथ रंगवाला मकान बनना है ताके खिये यहेरी याम अरु रंग रोग नादिक बहुत प्रकार के पदार्थ होवे है तैसे ही यह स्थूल देह नाना प्रकार तत्त्व से बनता है सो स्थूल देह मिथ्या है सत्य नहीं औ जो आत्मा चैतन सो सत्य है तार्ते सत्य सिद्ध कहिये है और सब मिथ्या प्रसिद्ध प्रतीत हान हैं यहां दृष्टान्त-एक ज्ञानि और एक अज्ञानि दोनों रस्ते पर जा रहे हैं सो रस्ते पर गाड़ी देख के ज्ञानि ने अज्ञानि बोलता हुआ कि अपन फुरती से चलिये तो गाड़ी पर बैठ लेवें तब ज्ञानि कहे गाड़ी है नहीं तू झूठ बोलता है अज्ञानि कहे है तू में झूठ होवे तू मेरे मुख पर थपड़ मारना ज्ञानि कहे तू गाड़ीपर हाथ लगा के यह गाड़ी है ऐसा तू सिद्ध कर देगा तू मैं थपड़ मारूंगा अज्ञानि गाड़ि उपर हाथ लगा के बोलता

हावा कि यह गाडी है ज्ञानि कहे ये तो चकर है
तब दूसरे ठिकाने हाथ लगाया तो कहा कि ये तो
धुरी है ऐसे गाड़ी की संपूर्ण अवैव्य पर हाथ रखा
गया परन्तु सारी अवैव्य के पृथक पृथक नाम होने
से यह गाडी है ऐसा सिद्ध हुआ नहीं यातें अज्ञा-
नि कहे मेरे मुख पर थपड़ मारो ज्ञानि कहे तेरे
मुख पर हाथ धर के यह मुख है सो सिद्ध कर दे
तो थपड मारूं अज्ञानि मुख पर हाथधर के यह मुख
है ज्ञानि कहे ये तो गाल है अज्ञानि अन्य ठौर
हाथ धरा तो कहा कि ये तो होठ है ऐसे मुख भी
सिद्ध हुआ नहीं इस रीति से स्थूल देह भी वहु
तत्नसे हुआ है यातें सिद्ध नहीं औ सत्य भी नहीं
अरु आत्मा सत्य औ सिद्ध है अब जाग्रत अवस्था
यह ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

जाग्रत अवस्था ॥ दोहा ॥

जाग्रत अवस्था नेत्रमें, वैखरी वाणी जाण ।
क्रिया शक्ति स्थूल भोग, रजोगुण पहिचाण॥५८॥

अकारअक्षरसोमात्रा, औरविश्वअभिमान।
ये आठतत्व जाग्रत के, स्थूल देह के जान ॥५६॥

टीका– स्थूल देह की जाग्रत अवस्था है या जाग्रत अवस्था का नेत्र विषे स्थान है परा पश्यन्ती मध्यमा और वैखरी ये चार प्रकारकी वाणी कहिये है तामें वैखरी वाणी सो जाग्रत में है औ क्रिया शक्ति है औ सुख दुःखादिक स्थूल भोग है पंचभूत के रजोगुण तमोगुण औ सत्वगुण यामें रजोगुण सो जाग्रत में है औ प्रणव के जो अकार उकार मकार ये तीन अक्षर ताकूं मात्रा कहते हैं ता में अकार अक्षर सो जाग्रत अवस्था विषेमात्रा है औ विश्वतैजस प्राज्ञ औ तुरीय चार अभिमानि चेतन के नाम है तामें विश्व चेतन सो जाग्रत में अभिमानि है, ये आठ तत्व जाग्रत अवस्था के हैं, सो स्थूल देहके जानै ता विश्वकी त्रिपुटी यह ॥५८॥५६॥

विश्व के भोग की त्रिपुटी ।। सवैया ।।

पांचज्ञान इन्द्रिय कर्मकी पांच ।
अन्तःकरण चारही जानि जे ॥
विषय शब्दादिक वाक्यादिक पांच ।
शंकल्पादिक चारही मानिजे ॥
चौदः इन्द्रियके देवता भी चौदः ।
ताकी चौदः त्रिपुटी बखानिजे ॥
तातें व्यवहार जाग्रतमें होत है ।
न्युन तत्व तै हानि पहिचानिजे ॥६०॥

टीका—पांच ज्ञान इन्द्रिय, पांच कर्म इन्द्रिय और चार अन्तःकरण ये चौदह इन्द्रिय के चौदह विषय तथा चौदह देवता इतने कूं विश्व के भोग की त्रिपुटी कहे हैं सो त्रिपुटी से जाग्रत का सम्पूर्ण व्यवहार सिद्ध होवै है यामें जितने तत्व कमती होवैं उतना व्यवहार कमती होवै है ताका यह कोष्टक

ज्ञानेंद्रिय	विषय	देवता	कर्मेन्द्रिय	विषय	देवता	चतुष्ट	विषय	चतुष्ट देवता
श्रोत	शब्द	दिशा	वाक	वाक्य	अग्नि	सत्व	चार	
त्वचा	स्पर्श	वायु	पाणि	आदान	इन्द्र	मन	माम्म	मुख्या
चक्षु	रूप	सूर्य	पाद	गमन	वामन	बुद्धि	निश्चय	ब्रह्मा
जिह्वा	रस	वरुण	शिश्न	मैथुन	प्रजा	चित्त	चिंतन	साची
प्राण	गंध	पृथ्वी	गुदा	विसर्ग	मृत्यु	अहंकार	गर्व	रुद्र

वर्तन ये (४०) तत्व से जाग्रत का व्यवहार होवे परन्तु जो तत्व कमती होवे तो व्यवहार भी कमती होवे, नेत्र रहित अन्धा, कान रहित बहिरा, ऐसे और भी जान लेना। प्राणका देवता पृथ्वी विचार सागर में देखना औ सत्यनाम अन्तःकरण स्थूल देह के संग्रह तत्व यह ॥५०॥

स्थूल देह के समग्रह तत्व ॥ दोहा ॥

पचीस तत्व पचि कृतके, अष्ट जाग्रत के जान।
ये तेंतीस स्थूल देह के, आत्म के नहिं मान ॥५१॥

टीका—पूर्व कहे जो पंचिकृत महापञ्च भूतक

पचीस तत्व और आठ तत्व जाग्रत अवस्था के, ये समग्रह तेंतीस तत्व सो स्थूल देहके कहिये है, आत्मा के नहीं, काहेतें ? जैसे तत्व जड़ मिथ्या है तैसे स्थूल देह भी मिथ्या जड़ है सो जड़ तें जड़ की उत्पत्ति होवै, परन्तु जड़ तें, चैतन्य की उत्पत्ति बनै नहीं औ स्थूल देह मिथ्या अनात्म है और आत्मा सत्य चेतन है सो तम प्रकाश की समान है, इस रीति से आत्मा के तत्व नहीं ॥६१॥

शिष्योवाच ॥ दोहा ॥

काको अनात्म कहत है, कौन आत्म का रूप।
तम प्रकाश जान्या चहुं श्री गुरु मुनि के भूप ॥६२।

श्री गुरूरुवाच ॥ चौपाई ॥

जा उपजत हैं जातें जाहां।
दोनों अनात्म जान ले ताहां ॥
युं स्थूल देह तत्वते याहां।
सूक्षम कारण आगे वाहां ॥६३॥

मो अनात्म दुःख मूल खेदा ।
वेद करत यु ताका छेदा ॥
आत्मसत अजन्य अखेदा ।
सो तम प्रकास दो भेदा ॥६४॥
और आत्म न उपजे विनशे ।
यातें वेद कहत सत जिनसे ॥
आत्म कू ब्रह्म कहिये इनसे ।
तजि अनात्म लगाव मन तिनसे ॥६५॥

॥ दोहा ॥

अनात्म स्थूल देहसे आत्म चैतन भिन्न ।
यातें अनात्म द्रव्य तजि, आत्म द्रष्टा चिंन ॥६६॥

टीका—हे शिष्य तेरा यह कहना है कि आत्मा औ अनात्मा सो तम प्रकाश की नाईं है याते आत्मा का रूप कैसा है औ अनात्मा का रू कहते हैं, सो कहो (उत्तर) जो पदार्थ जो वस्तु

से होवै, तहां सो दोनों कूं अनात्म कहिये है, ऐसा स्थूल देह तत्त्व से हुआ है, तैसे सूक्ष्म देह औ कारण देह सो आगे कहेंगे, सो तीनों देह दुःख का मूल क्लेश रूप है, याते वेद तिनको नाश करता है और आत्मा उत्पत्ति रहित स्वतः सुख रूप है, ताकूं प्रकाश सूर्य रूप कहिये है और देहादिक अनात्मा सो तम कहिये रात्रि रूप है यह ताका दो प्रकार के भेद कहिये है और आत्मा न उत्पन्न होवै है औ न विनाश होवै है जिनते वेद ताकूं सत्य कहते हैं इस रीति से आत्मा कूं ब्रह्म कहिये है याते अनात्मा का त्याग करके आत्मा में अहं भाव करे—काहेते ? सो ब्रह्म निज स्वरूप है औ ता स्वरूप के अज्ञान कूं कारण देह कहे है सो कारण देह से सूक्ष्म देह होवै है और सूक्ष्म देह से स्थूल देह होवै है ताकूं अनात्म कहिये है औ चेतन कूं आत्म कहिये है तिनमें अनात्म उत्पन्न होवै औ नाश होवैं, याते प्रातिभासिक नाम प्रतीति मात्र सो मिथ्या है और आत्मा

उत्पत्ति नाश रहित है याते सत्य कहिये है और सो अनात्मा स्थूल देह दृश्य है और ताका द्रष्टा आत्मा सो स्थूल देह स भिन्न है याते अनात्म दृष्य का त्याग करके आत्म द्रष्टा की पहिचान करे औ जो पदार्थ सनमुख होव ताकू दृश्य कहिये है औ ताके देखने वाले कू द्रष्टा कहिये हैं, स्थूल देह दृश्य है औ आत्मा द्रष्टा है, ता द्रष्टा कूं साखी कहे हैं ॥६२॥ स ॥६६॥

शिष्योवाच ॥ दोहा ॥

देह विन क्रिया है नहीं, अरु कह्यो आत्मा भिन्न ।
सो मेरो सशय मिटे, व युक्ति कहो प्रवीन ॥६७

श्री गुरोत्तर ॥ दोहा ॥

जहा क्रिया है देह सें, तहां चैतन प्रकाश ।
सोई साखी भिन्न यहा, किन्तु दे आभास ॥६८।

टीका—हे शिष्य ! जहां स्थूल देह से क्रिया होवे तहा आत्मा प्रकाश कहिये किन्तु देखन वाला

है ताकूं साची कहे है सो साची यहां न्यारा हुआ केवल आभास देता है और निर्विकारी है अरु स्थूल देह षट विकारवान है ॥६७॥६८॥

शिष्य प्रश्न ॥ दोहा ॥

षट विकार काको कहे, सो कहो गुरु देव ।
देह विकारी दूर करि, जाणूं निरमल भेव ॥६९॥

श्री गुरु षट विकार ॥ दोहा ॥

जन्मे १ है २ वृद्धि करे ३ चौथा तरुणा होइ ४
जरा अरु५ विनाश होवै ६ षट विकार यह सोइः७०
पंचिकृत पंच भूतका, स्थूल देह बखाण ।
निज भ्रांतिसे मानि रह्यो, सिंह बकरे प्रमाण ॥७१॥

टीका—हे शिष्य स्थूल देह जन्मे है औ है कहिये स्थित प्रतीति औ वृद्धि कहिये बड़ा होवै और तरुण कहिये युवा औ जरा कहिये बूढ़ा औ विनाश कहिये नाश ये षट् विकार वाला स्थूल देह कहिये है ताको पंचिकृत महापंचभूतन का पूर्व कहि आये

है सो स्थूल देहकूं भ्रान्ति से तू अपना मानि रहा है सो जैसे सिंह कूं बकरे का अध्यास हुआ था तैसे तेरे कूं भी मिथ्या देहाध्यास हुआ है तहां (दृष्टान्त) कोई एक जीवनराम नामका साहूकार होगा सो धर्म कार्य करने के वास्ते अन्य जाति से भोजनशाला मकान अमुक वर्ष के वायदे मांग के अपने रहा परन्तु धर्मकार्य तो कुछ किया नहीं और वायदा हो चुका याते अन्य ज्ञाति वाले ने मकान खाली करने के वास्ते कहा तथापि जीवनराम ने कुछ उत्तर दिया नहीं याते अन्यज्ञाति वाले ने अदालत में दावा करके मकान छीन लिया और जीवनराम कूं जेल दाखिल किया, काहेतें ? धर्मकार्य किया नहीं और मकान मेरा है ऐसे ठगाई करी इस वास्ते जीवनराम जेल दाखिल हुआ, ॥ सिद्धान्त ॥ जीवनराम कहिये जीव सो धर्मकार्य मोक्ष करने के वास्ते अन्य ज्ञाति पंचभूतन से आयु करार करके भोजनशाला रूप स्थूल देह मांग के रहा सो धर्मकार्य मोक्ष किया नहीं अरु विषय

भोग में आयु बित गई तब पंचभूतोंने स्थूल देह वापस के निमित्त तगादारूप वृद्धावस्था भेजी तो भी अज्ञानी जीव नहीं मानता है याते पंचभूतों ने ईश्वर अदालत यमराज से पुकार करके स्थूल देह छीन लिया और जीवकूं जेलरूप चौरासी में भेज दिया काहेतें ? जीव ने धर्मनीति विरुद्ध दुस्तरकर्म किये औ मोक्ष किया नहीं इसलिये जीव चौरासी योनि विषे जन्म मरण रूप भ्रमण कूं प्राप्त हुआ इस रीति से स्थूल देह पंचभूतन का जानि के अहंता दूर करे (दृष्टान्त दूसरा) कोई एक गडरिया पहाड़ से सिंह के बच्चे कूं पकड करके अपने बकरे के साथ अरण्य में फिराता हुवा घास चाराता है और बड़ा बकरा नाम से बुलाता है तहां दूसरा जंगली सिंह आया ताकूं देख के बकरे के साथ डरका मारा सिंह का बच्चा भी भागा तब देख के जंगली सिंह बोलता भया कि हे भाई तू सिंह मेरी भय से मत भाग तब सिंह का बच्चा कहै तू सिंह है औ मैं सिंह नहीं हूं तू मेरेकूं मारने को सिंह कहता है ऐसा

है सो स्थूल देहकूं भ्रान्ति से तू अपना मानि रहा है सो जैसे सिंह कू बकरे का अध्यास हुआ था तैसे तेरे कूं भी मिथ्या देहाध्यास हुआ है तहां (दृष्टान्त) कोई एक जीवनराम नाम का साहूकार होगा सो धर्म कार्य करने के वास्ते अन्य ज्ञाति से भोजनशाला मकान अमुक वर्ष के वाइद् मांग के अपने रहा परन्तु धर्मकार्य तो कुछ किया नहीं और वाइदा हो चुका याते अन्य ज्ञाति वाले ने मकान खाली करने के वास्ते कहा तथापि जीवनराम ने कुछ उत्तर दिया नहीं याते अन्यज्ञाति वाले ने अदालत में दावा करके मकान छीन लिया और जीवनराम कूं जेल दाखिल किया, काहेतें ? धर्मकार्य किया नहीं और मकान मेरा है ऐसे ठगाई करी इस वास्ते जीवनराम जेल दाखिल हुआ, ॥ सिद्धान्त ॥ जीवनराम कहिये जीव सो धर्मकार्य मोक्ष करने के वास्ते अन्य ज्ञाति पंचभूतन से आयु करार करके भोजनशाला रूप स्थूल देह मांग के रहा सो धर्मकार्य मोक्ष किया नहीं अरु विषय

ोग में आयु वित गई तब पंचभूतोंने स्थूल देह
ापस के निमित्त तगादारूप वृद्धावस्था भेजी तो भी
.ज्ञानी जीव नहीं मानता है याते पंचभूतों ने ईश्वर
.दालत यमराज से पुकार करके स्थूल देह छीन
लेया और जीवकूं जेलरूप चौरासी में भेज दिया
ाहेतें ? जीव ने धर्मनीति विरुद्ध दुस्तरकर्म किये
प्रौ मोक्ष किया नहीं इसलिये जीव चौरासी योनि
वेषे जन्म मरण रूप भ्रमण कूं प्राप्त हुआ
.स रीति से स्थूल देह पंचभूतन का जानिके अहंता
दूर करे (दृष्टान्त दूसरा) कोई एक गड़रिया पहाड़
से सिंह के बच्चे कूं पकड करके अपने बकरे के साथ
अरण्य में फिराता हुवा घास चाराता है और बडा
बकरा नाम से बुलाता है तहां दूसरा जंगली सिंह
आया ताकूं देख के बकरे के साथ डरका मारा
सिंह का बच्चा भी भागा तब देख के जंगली सिंह
बोलता भया कि हे भाई तू सिंह मेरी भय से मत
भाग तब सिंह का बच्चा कहै तू सिंह है औ मैं सिंह
नहीं हूं तू मेरेकूं मारने को सिंह कहता है ऐसा

सुन के जंगली सिंह ने अनुमान किया कि ये बचा पकड़ में आया यातें बकरे के साथ घास खाता हुवा मेरे से डरता है अब दया भावसे ताको मैं सिंह भाव करूं ऐसा विचार करके फेर कह्यो हे भाई तू मेरे से भाग नहीं औ मेरी वार्ता सुन जैसा मैं सिंह हूं तैसा तू भी सिंह है तब बचे ने कहा मैं तो बड़ा बकरा हूं सिंह नहीं तब जंगली सिंह तीसरी दफेर बोला हे भाई तू डरता है सो मत डर औ मैं प्रतीज्ञा से नहीं मारूंगा तथापि विश्वास आवे नहीं तो दूर खड़ा रह परन्तु एक वार्ता सुन ऐसे धीरज के प्रमाणिक वचन जानि के बचा दूर खड़ा हुवा सुनता है औ जंगली सिंह वार्ता कहे है—हे भाई तेरी औ मेरी संपूर्ण अवयव समान रूप है और बकर की संपूर्ण अवयव विलक्षण है इस रीति से तू बकरा नहीं अरु सिंह है तब वह बचा धीरजसे बोलना भया कि मेरा औ तुम्हारा मुख समान कैसे मान काहे त मैं घास खाता हूं और मुख नहीं देखता हूं और तुम तो मांस खाते हो यात सो मेरा

संशय मिट जावे तो मै सिंह हूं ऐसा मानूं तब दोनों जल किनारे पर जाके संदेह दूर किया और बकरे को मारने लगा (सिधांत) गडरिया रूप अहंकार महा मेरु ब्रह्म पहाड़से चैतन सिंह बचे- रूप जीवकू पकड़के बकरे रूप इन्द्रियन के साथ अरण्य रुप संसारमे फिराता हुआ घास रूप विषय सुख भोगता है औ बड़े बकरे रुप देहाध्यास कराता है तहां कोइ वनवासी वाघ रुप ब्रह्मनिष्ठ का आ- गमन हुआ ताकूं देखके पांमर आज्ञानी दूर भाग- ता हैं तो समागमकी का कहे परंतु संत बड़े परम दयालु हैं याते रोचक भयानक यथार्थ शास्त्रन सहित अनेक युक्तियोंसे धर्म रस्ते पर चला रहे हैं याते विरले विरले वीर पुरुष इन्द्रियनका दमन भी करते हैं यातें ज्ञान द्वारा मोक्षकूं प्राप्त होते हैं और कितने पामर चौरासीमें भ्रमण करते भी है ॥६९॥७०॥७१॥

शिष्य प्रश्न ॥ दोहा ॥

भगवन यह संसारमें, लख चौरासी खाण ।
सो भोगै कौन कर्मतें, कहो मोकूं बखाण ॥७२॥

श्री गुरू तीन प्रकार के कर्म ॥ दोहा ॥

प्रथमक्रिया जन करत है, ताको जु होवे फल ।
सोही सचित जानिये, नैमित प्रार्ब्ध वल ॥७३॥
प्रार्ब्धसे काया वने, लिंग युत् सग जीव ।
पुन्यपापसोभोगवे, औरभिन्नआत्माशिव ॥७४॥

टीका—हे शिष्य मनुष्य प्रथम जो क्रिया करता है ताकू क्रियमाण कर्म कहिये है, सो क्रियमाण मे जो पैदा होवै सो फल है, ताको संचित कहे हैं, और पुन्य पाप कर्म भी कहे हैं, औ संचित के माहिस जीवके जो भोगानेकें वास्ते इश्वर निमित करत है, ताका प्रारब्ध कर्म कहिय है, सो प्रारब्ध के मसाल काया बने हैं, सो काया का संगी लिंग देह युत जीव हैं सो जीव पुन्य पापका भोक्ता कहिय ई, और असंग जो आत्मा सो अभोक्ता शिव कहिय कल्याण रूप है, ॥७२॥७३॥७४॥

शिष्योवाच ।। दोहा ।।

क्रिया कर्म कित भांतके, कहिये ताकी रीत ।
सो मेर हिरदे लखौ, गुरु देव मुनि विर्चित ।।७५।।

श्री गुरु-क्रिया कर्म ।। सोरठा ।।

विस्तारी कहु बात, सुनहु शिष्य सो कर्म की ।
हिय लहेकुशलात, यह भी तीन प्रकार के ।।७६।।

।। कवित्त ।।

चोरी जारी हिंसा कर्म, कहतकायाकेसोइ ।
निद्याझूठ कठोरता, बाचालु वाक मानिले ।।
शोक हर्ष द्वेष बुद्धि, तीन दोष मन के है ।
काया वाचा मनहुँ के, दश दोष ठानिले ।।
तीन काया चार वाचा, तृयदोष मनके जो ।
ये दश दोष जाल जगत् पहिचानि ले ।।
लखचौरासी खाणि विषे, सो कर्म भ्रमावै है ।
यातें जो त्यागै ताकूं जीवन मुक्त जानिले ।।७७।।

टीका—हे शिष्य क्रियमाण कर्म भी तीनप्रकार के कहिये हैं, सो विस्तार से कहता हूँ, ताको प्रसंन होके सुण चोरी व्यभिचारी और हिंसा ताकू कायिक कर्म कहिये है, झूठ बोलना और अधिक बोलना तथा निन्दा और कठोर वचन ताकू वाचिक दोष कहिये है, शोक होवे हर्ष होवे, वो किसी का द्वेष करने वाली बुद्धि ताकू मानसिक दोष कहिये है, काया के कहिये जो शरीर से कर्म होवे सो कौषायिक कहिये जो रसना से कर्म होवे सो भी मानसिक कहिये जो अन्तःकरण से कर्म होवे ये दशों दोष कहिये है तीन काया के, चार वाणी के और तीन मानसी कहिये अन्तःकरण के ये दश गुण जगत की जाल रूप है सो गुण जीव को चौरासी योनि भोगाते हैं। याते ये दशों गुण तजे सो जीवन मुक्त है ॥७५॥७६॥७७॥

शिष्य प्रश्न ॥ दोहा ॥

तन मरे जब भोग नहीं, तब कर्म कहा समाय ।
अब याको उत्तर कहो, श्री गुरु मुनिराय ॥७८॥

श्री गुरोत्तर ॥ दोहा ॥

कर्म रहे लिंग देहमें सूत्तम जाको नाम ।
पुन्य पाप फल भोगवै, धरे दूसरो धाम ॥७६॥
जीव कर्म नहीं भोगवें, भोगै सूत्तम देह ।
आत्मसे भिन्न जीव नहीं, जोति आभा सजेह॥८०॥

टीका—हे शिष्य तेरा कहना यह है कि जब देह का नाश हो जावै तब भोग्य भोगने का साधन जो स्थूल देह है ताका अभाव होनेसे भोग्य का भी अभाव होना चाहिये यातें तिस काल में कर्म कहां रहे हैं सो तेरा कहना है ताका यह उत्तर जब पूर्व स्थूल देह का नाश होवै तब कर्म लिंग देह मे रहे है सो लिंग देह कू सूत्तम देह कहे है ता सूत्तम देह अपने कर्म सहित उत्तर स्थूल देह कू धारण करता है और फेर पुन्य पाप के फल सुख दुःख कू भोगै है सो सूत्तम देह प्राण इन्द्रियन का है सो कर्त्ता भोक्ता है औ जीव कर्त्ता

भोक्ता है नहीं काहेतें ? जैसे ज्योति से प्रकाश भिन्न होवै नहीं तैसे आत्मा का जो बुद्धि में आभास है ताकूं जीव कहे हैं, इस रीति से जीव आत्मा से अभिन्न कर्त्ता भोक्ता रहित है ॥७८॥७९॥८०॥

शिष्य प्रश्न ॥ दोहा ॥

स्थूल देह सो मैं नहीं, मेरा सूक्ष्म देह ।
जामें कर्म भासियत, लिंग बखानै ते॒ ॥८१॥

टीका—हे गुरू जो स्थूल देह सो मैं नहीं औ मेरा भी नहीं परन्तु सूक्ष्म देह सो मेरा है औ मैं हूं काहेतें ? जो सूक्ष्म देह सो कर्म कूं रहने का स्थान है और कर्त्ता भोक्ता भी है यातें सो सूक्ष्म देह मेरा है, ॥८१॥

श्री गुरोपदेश ॥ दोहा ॥

सूक्ष्म भी तेरा नहीं, तू सूक्ष्म तें भिन्न ।
जैसे तत्व है स्थूल के, तैसे लिंग ही चिन्न ॥८२॥

टीका—हे शिष्य सूक्ष्म देह भी तेरा नहीं औ तू सूक्ष्म देह नहीं, काहे तें? जैसे स्थूल देह के तत्व है, तैसे ही लिंग देह के तत्त्व जान, याते सूक्ष्म देह से भी तू भिन्न है ॥८२॥

शिष्योवाच ॥ दोहा ॥

में बुद्धि बलहीन प्रभू, तुम हो बुद्धि निधान।
जो यथा योग्य सो कहो, जाते होय कल्यान॥८३॥
भगवन जान्या में चहूं, लिंग देह विस्तार।
तत्व अरुताकी अवस्था, पुनि त्रिपुटी निधार॥८४॥

श्री गुरू सूक्ष्म देह ॥ सोरठा ॥

सूक्षम देह प्रकार, सावधान हुइ शिष्य सुन।
भाखूं तत्व निर्धार अपंचिकृत भूतन के॥८५॥
तत्व उपजत हे जेह, ताहिं देह सूक्षम कह्यो।
पढ़ उत्तर दक्षिण तेह पुनि पूर्व पश्चिम पढ़े॥८६॥

टीका—हे शिष्य सूक्ष्म देहका प्रकार यह

सावधान हुइ के सुन, अपंचिकृत महापंचभूतनके तत्त्व सो निर्धारके, कहता हूं, ये तत्त्व जो उत्पन्न होवै, सोई सूक्ष्म देह कह्या है ताका आगे कोष्टक है सो कोष्टक प्रथम उत्तर दिशा तें दक्षिण दिशा पढना अनंतर पुर्व दिशा तें पश्चिम दिशा पढना, सो तत्त्व की यह ॥८५॥८६॥

अष्ट पुरि ॥ कवित्त ॥

पंच भूत प्रथम पुर दूजो पुर सत्व को ।
पांच प्राण वायु पुर तीसरो वखानिये ॥
चौथो पुर ज्ञान इंद्रिय कर्म पुर पंचमो ।
शब्द आदि विषय को पुर नहीं मानिये ॥
काम कर्म जीव अविद्या पुर छ सात आठ ।
पुराण की रीति यह अष्ट पुरि गानिये ॥
सूक्ष्म देहके सत्रा तत्व वेद में कहते हे ।
ताको भेद लेश यहां ग्रहण न जानिये ॥८७॥

कर्त्ता भोक्ता अंतःकरण व्यान वायु बैठके ।
आय द्वार श्रोत्र पर शब्द सुणा धारे है ॥
यातें जो कर्मइंद्रिय वाणी सेवक ताकी सो ।
ज्ञानहु करावन को वचन उचारे है ॥
ऐसे मन बुद्धि चित अहंकार कर्त्ता भोक्ता ।
निज निज वाहन तें बैठके पधारे है ॥
निज निज द्वार पर आय भोग इच्छा करे ।
तहां जाका जो सेवक सो भोग लही ठारे हैं ॥८८॥

टीका—अपंचिकृत महापंचभूतनका प्रथम पुर औसत्व कहिये पांच अंतःकरणका दूसरा पुर औ पांच प्राणवायु का तीसरा पुर औ चतुर्थ पुर पांच ज्ञान-इंद्रियनका औ पांच कर्मइन्द्रियनका पांचवां पुर और पांच शब्दादिक विषयन का पुर नहीं, काहे तें ? यह अष्ट पुरि विषे कर्त्ता भोक्ता पांच अन्तःकरण है, औ पांच प्राणवायु सो पांच अंतःकरण के वाहन है, औ पांच ज्ञान-इन्द्रिय सो पांच

अंतःकरणके द्वार है, औ पांच कर्मइन्द्रिय सो पांच अंतःकरण के सचक हैं, और पांच विषय सो पांच अंतःकरण के भोगने के वास्ते किंतु भोग है, याते विषयभका पुर नहीं कहिये है, औ नाना प्रकारकी कामनाका जो स्वरूप सो षष्ठ पुर है औ कर्म का सप्त पुर है और जीव अविद्याके सम्बंधका अष्ट पुर ताहू पुराणकी रीतिसे अष्टपुरि कहिये है औ वेदान्त संप्रदाय विषे सूक्ष्म देहके सप्रद तत्त्व कहिये है सो अधिक न्यून तत्त्वका भेद है, तथापि सो भेद का दोष भी ग्रहण नहीं काहे ते जैसे गौ कूं पयकी अथवा पवित्रा होवै सा देखनेका नहीं किंतु दृष रूप सूक्ष्म देहकाही अंगीकार याते भेदका त्याग करके पुराणकी रीतिसे तत्त्वका वर्णन-कर्त्ता भोक्ता अर्थात्-कर्मका करनेवाला औ ताकेफल के भोगने वाला सो अंतःकरण वस्तुता एक है परंतु चार वृत्तियों करके अंतःकरण पांच कर्त्ता भोक्ता कहिये है अंतःकरण-मन-बुद्धि चित्त अहंकार नामें अंतःकरण अपने वाहन व्यान वायु

पर बैठ के अपने द्वार ज्ञानेन्द्रिय श्रोत्र द्वार पर आयके अपना विषय शब्द सुनने की इच्छा करता है यातैं सेवक कर्म इन्द्रिय वाणी सौ अपना विषय वचन बोल के शब्द का ज्ञान कराता है, ऐसे मन आदिक अपने अपने वाहन पर बैठ के अपने अपने द्वार पर आके अपने अपने विषय की इच्छा करते हैं यातैं, सेवक कर्मेंद्रियां निज निज विषय तैं क्रिया करके ज्ञानेंद्रिय द्वारा मन आदिकन कूं ज्ञान कराते हैं, सो कोष्ठकमें प्रथम उत्तर दिशातैं दक्षिण दिशा पढ़े अनन्तर पूर्व तें पश्चिम पढ़ैं तहां पांचों अन्तःकरण के विषय तथा देवता और पांचों प्राणके स्थान औ क्रिया है और पाँचों ज्ञानेन्द्रियके विषय औ देवता है और पांचों कर्मेन्द्रिय के विषय औ देवता है और पांचों विषय किन्तु अन्तःकरण पांचों के भोग हैं सो भोग क्रिया स्थान विषय देवता रहित है और अन्तःकरण व्यानवायु श्रोत्रवाणी औ शब्द ये पांच आकाश के है और मन समान वायु त्वचा पाणि स्पर्श ये पांच वायु के है और

बुद्धि उदान वायु, चक्षु, पाद औ रूप ये पाँच तेज के है और चित्त प्राण वायु जीभ्हा शिस्न औ रस ये पाँच जल के है और अहंकार अपान वायु प्राण-ब्दा औ गन्ध ये पांच पृथ्वी के है ये पांचों पंचक सो पांचो भूत से एक एक तत्त्व उत्पन्न हुये हैं तथापि पांचो अन्तःकरण आकाशके कहिये है और पांचा प्राण सों वायु के कहिये है और पांचो ज्ञाने न्द्रियां तेज की कही है और पांचों कर्मइन्द्रियां जलकी कही है और पांचो विषय पृथ्वी के कहिये है काहेतें ? जैसे पूर्व स्थूल देहकी तन मात्रा कहि आये हैं तैसे यह तत्त्व भी जान लेना सो यह कोष्ठक में प्रथम उत्तर दिशामें दक्षिण दिशा पढ़ना, अनन्तर पूर्व दिशा से पश्चिम दिशा पढ़े, ताका स्पष्ठ यह कोष्ठक है।

॥ श्री जगन्नाथ जी ॥

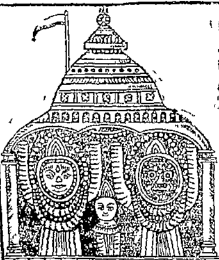

श्री हनुमान जी

श्री महादेव जी

श्री गणेश जी

पूर्व—

उत्तर

पञ्चभूत आकाशका	अंतःकरण कर्ता भोक्ता सो	आकाशके ध्यान वायु वाहन पर बैठकके
	आकाशके पांच अन्तःकरणताका देवता विष्णु पाते स्फुरण होवै ।	वायुके प्राणपञ्चक व्यानका स्थान सर्वांगे क्रिया हलीका चलन करे ।
वायुका	मन कर्ता भोक्ता सो० ताका देवता चन्द्रमा पाते संकल्प होवै ।	समान वायु नाभि क्रिया रोम रोम पाचन अन्न भेजे ।
तेजकी	बुद्धि कर्ता भोक्ता सो० ताका देवता ब्रह्मा पाते निश्चय होवै ।	उदान वायु कंठ में क्रिया स्वप्न सुषुप्ती अन्योन्यक व्यार करे ।
जलका	चित्त कर्ता भोक्ता सो० ताका देवता साक्षी पाते चिंतन होवै ।	प्राण वायु हृदय क्रिया (२१६००) श्वासा रात दिन चलावै ।
पृथ्वीका	अहंकार कर्ता भोक्ता सो० ताका देवता रुद्र पाते अभिमान होवै ।	अपान वायु गुदा स्थान क्रिया मल त्याग करे ।

पश्चिम—

दिशा

आकाश के श्रोत्र द्वार आके विष्येच्छा करि	आकाशकी वाक सेबकने आकाशका शब्द सुनाया	आकाशका शब्द
तेज ज्ञानेंद्रिय पंचक श्रोत्र देवता दिशा यातें शब्द सुणे ।	जल कर्मेंद्रिय पंचक वाक देवता अग्नि यातें वचन बोले ।	पृथ्वी विषय पचक शब्द
त्वचा देवता वायु यातें स्पर्श होता है ।	पाणी देवता इद्र यातें ग्रहण त्याग होता है ।	स्पर्श
चक्षु देवता सूर्य यातें रूप ज्ञान होता है ।	पाद देवता उपेंद्र याते गमन होता है ।	रूप
जीह्वा देवता वरुण यातें रस ज्ञान होता है ।	उपस्थ देवता प्रजापति याते मैथुन होता है ।	रस
घ्राण देवता अश्विनी-कुमार याते गध ज्ञान होवे ।	गूदा देवता यम याते मल त्याग होवै ।	गंध

दक्षिण दिशा

दिशा

वर्णन—यह कोठक प्रथम सतर दिशातें दक्षिण दिया पढ़े, आकाशका अन्तःकरण कर्त्ता भोक्ता सो आकाश के व्यान वायु अपने वाहन पर बैठके आकाश का श्रोत्र ज्ञानेंद्रिय द्वार आके अपने विषय ज्ञानकी इच्छा करी यातें आकाश की वाणी कर्मेंद्रिय सेवक ने वचन बोलके आकाश के शब्द का ज्ञान अन्तःकरण को करवाया और वायु का मन कर्त्ता भोक्ता सो वायु के समान वायु अपने वाहन पर बैठके वायु की ज्ञानेंद्रिय त्वचा द्वार आके अपने विषय ज्ञानकी इच्छा करी यातें वायुकी पाणी कर्मेंद्रिय सेवक ने स्वंजोरी के वायु के स्पर्श का मन को ज्ञान करवाया और तेज की बुद्धि कर्त्ता भोक्ता सो तेजके उदान वायु अपने वाहन पर बैठके तेजकी ज्ञानेन्द्रिय चक्षु द्वार आके अपने विषय ज्ञानकी इच्छा करी याते तेज की कर्मेन्द्रिय पाद सेवक ने गमन करके तेजके रूपका बुद्धिकूं ज्ञान करवाया और जलका चित कर्त्ता भोक्ता सो अपने वाहन जलके प्राण वायु पर बैठ के जलकी

ज्ञानेन्द्रिय जीव्हा द्वार आके अपने विषय ज्ञान की इच्छा करी याते जलकी शिश्न कर्मेन्द्रिय सेवकने मैथुन करके जलके रसका चित्तकूं ज्ञान करवाया और पृथ्वीका अहंकार कर्ता भोक्ता सो अपने वाहन पृथ्वीके अपान वायु पर बैठके पृथ्वी की ज्ञानेन्द्रिय घ्राण द्वार आके अपने विषय ज्ञान की इच्छा करी याते पृथ्वीकी गूदा कर्मइन्द्रिय सेवक ने मलका त्याग करके पृथ्वी के गंधका घ्राणकूं ज्ञान करवाया। और गन्ध दो प्रकार की है एक सुगन्ध और एक दुरगन्ध। सुगन्ध अनुकूल हैं औ दुरगन्ध प्रतिकूल है। अब पूर्व दिशातें पश्चिम दिशा कोष्टक पढ़े यद्यपि एक एक भूत से एक एक तत्त्व की उत्पति होती है तथापि जैसे स्थूल देह की तनमात्रा कहि आये है तैसे सूक्ष्म देह में भी जान लेना इस रीति से पांचों अन्तःकरण आकाश भूत के कहिये है और वायु भूतके पांचो प्राण कहिये हैं, औ तेज भूतकी पांचों ज्ञानइन्द्रिय कहिये है, और जल भूतकी पांचों कर्म इन्द्रिय कहिये है औ पृथ्वी

भूतके पाचों विषय कहिये है, आकाश का अन्तःकरण देवता विष्णु यातें विषय स्फुरणा होवे है। आकाश का मन देवता चन्द्रमा यातें विषय संकल्प होवे है, आकाश की बुद्धि देवता ब्रह्मा, यातें विषय निश्चयता होती है, आकाश का चित्त देवता आत्मा ताकू नारायण कहे है, यातें विषय चिंतन होवे है, आकाश का अहंकार देवता रुद्र यातें विषय अभिमान होवे है, और वायु का व्यानवायु ताका स्थान सर्व अङ्ग विषे है औ क्रिया सम्पूर्ण शरीरका चलन करे है, वायु का समान वायु ताका स्थान नाभि में है औ क्रिया अन्न तथा जल का पाचन रसकूं नाड़ी द्वारा रोम रोम पर पहुँचता है। वायुका उदान वायु ताका स्थान कण्ठ में है औ क्रिया स्वप्न सुषकी तथा अन्न जलका विभाग करके न्यारे न्यारे स्थान में पहुँचता है, वायुका प्राणवायु ताका हृदय स्थान है औ क्रिया (२१६००) स्वासोस्वास दिन रात्रिके चलाता है। वायुका अपानवायु ताका स्थान गुदामें है औ क्रिया मल

का त्याग करता है और तेजकी ज्ञानइन्द्रिय श्रोत्र देवता दिशाका अभिमानि दिगपाल चैतन है याते विषय शब्दका अमुक दिशातें ज्ञान होवै है, तेजकी ज्ञानइन्द्रिय त्वचा देवता वायु चैतन है यातें विचय स्पर्शका ज्ञान होता है तेजकी ज्ञानेन्द्रिय चक्षु देवता सूर्य है यातें विषय रूप आकारका ज्ञान होवै है, तेजकी ज्ञानेन्द्रिय जिव्हा देवता वरुण यातें विषय रसास्वाद का ज्ञान होवै है, तेजकी ज्ञान-इन्द्रियघ्राण देवता अश्वनीकुमार यातें सुगन्ध अथवा दुरगन्ध का ज्ञान होवै है और जलकी कर्म-इन्द्रिय वाणी देवता अग्नि याते विषय वचन बोला जाता है, जलकी कर्मइन्द्रिय पाणि देवता इन्द्र याते विषय ग्रहण त्याग होता है, जलकी कर्म-इन्द्रिय पाद देवता उपेन्द्र कहिये वामन जी याते विषय गमन होता है, जलकी कर्मइंद्रिय शिश्न कहिये उपस्थ वा मेढ़ु देवता प्रजापति यातें विषय रति विलास होता है, जलकी कर्मेंद्रिय गूदा देवता यमराजा याते विषय मल विसर्ग होता है

और पृथ्वीके पांच विषय-शब्द, स्पर्श, रूप, रस औ गंध है ताकूं त्रिपय देवता और स्थान मणा किया सो है नहीं, काहेते? चेतन विषे अंतःकरण उपाधि होनेमें जीवके भोग विषय कहिये है तथापि सो अंतकरण उपाधि साथ होनेसे किन्तु अतकरण के भोग ही विषय है, याते सो पाँचो विषयन कूं देवता आदिक नहीं औ पूर्व जो तत्व कहि आये ताके विषे अध्यात्मधर्म वाले तत्व का निरूपण यह ॥८७॥८८॥

अध्यात्म त्रिपुटी ॥ सवैया ॥
पांचो अंत करण अध्यात्मकहे ।
अधिभूत विषय को मानिहू ॥
ताके देवता कू अधीदैव कहे ।
ऐसे ज्ञान इन्द्रि पहिचानिहू ॥
कर्म इंद्रिय विषय देवता ।
याको धर्म अध्यअधी जानिहू ॥

पांच प्राणकूं न विषय देवता।
इमि नहीं अध्यात्म बखानिहू ॥८६॥

टीका—पांच अंतःकरण कूं अध्यात्म कहिये है, ताके पांच विषयन को अधिभूत कहिये है, औ पांचो देवता अधिदेव कहिये है, और पांच ज्ञानेन्द्रियन अध्यात्म कहिये है, ताके पांच विषय अधिभूत कहिये है, औ पांच देवता अधिदेव कहिये है, और पांच कर्मइन्द्रियनको अध्यात्म कहिये हैं, ताके पांच विषय अधिभूत कहिये है, औ पांचों देवता अधिदेव कहिये है, और पांच प्राणका अध्यात्म धर्म नहीं काहेतें ? जाको विषय तथा देवता होवै ताका अध्यात्म धर्म कहिये है, अन्यको नहीं। और प्राण कूं विषय देवता है नहीं, आते अध्यात्म नहीं कहिये है, और अन्तःकरणअध्यात्म विषय स्फुरणा अधिभूत औ देवता विष्णु अधिदेव, और मन अध्यात्म, विषय संकल्प अधिभूत औ देवता चन्द्रमा अधिदेव और बुद्धि अध्यात्म, विषय निश्चय अधिभूत औ देवता

ब्रह्मा अधिदेव और चित्त अध्यात्म, विषय स्मरण अधिभूत औ देवता नारायण अधिदेव अहंकार अध्यात्म, विषय अभिमान अधिभूत औ देवता रुद्र अधिदेव,-और ज्ञानेन्द्रिय श्रोत अध्यात्म, विषय शब्द अधिभूत औ देवता दिग्पाल अधिदेव, और ज्ञानेंद्रिय त्वचा अध्यात्म, विषय स्पर्श अधिभूत औ देवता वायु अधिदेव और ज्ञानेन्द्रिय चक्षु अध्यात्म, विषय रूप अधिभूत और देवता सूर्य अधिदेव और ज्ञानेंद्रिय जिव्हा अध्यात्म, विषय रस अधिभूत, औ देवता वरुण अधिदेव और ज्ञानेंद्रिय घ्राण अध्यात्म-विषय गंध अधिभूत औ देवता अश्वनीकुमार अधिदेव और कर्मइन्द्रिय वाक अध्यात्म, विषय वाक्य अधिभूत औ देवता अग्नि अधिदेव और कर्मेन्द्रिय पाणि अध्यात्म, विषय ग्रहण त्याग अधिभूत औ देवता इन्द्र अधिदेव कर्मेंद्रिय पाद अध्यात्म, विषय गमन अधिभूत औ देवता उपेन्द्र अधिदेव और कर्मेंद्रिय उपस्थ अध्यात्म, विषय रति विलास अधिभूत

औ देवता प्रजापति अधिदेव और कर्मेंद्रिय गूदा अध्यात्म, विषय मल त्याग अधिभूत औ देवता यमराजा अधिदेव—यह त्रिपुटी से स्वप्न अवस्थामें तैजस भोक्ता है सो स्वप्न अवस्था यह ॥८९॥

स्वप्न अवस्था ॥ दोहा ॥

स्वप्न अवस्था कंठ बसै, मध्यमा वाक बखान ।
इच्छा शक्ति सूक्ष्म भोग, सत्वगुण पहिचान॥९०॥
उकार अक्षर सो मात्रा, अरु तैजस अभिमान ।
ये आठ तत्व जो स्वप्न के, लिंग देहके जान ॥९१॥

टीका—हे शिष्य सूक्ष्म देहकी स्वप्न अवस्था कहिये है सो अवस्था को स्थान कण्ठ में हैं मध्यमा नामकी वाणी अरु इच्छा शक्ति है, मनोमय सुख दुःख सूक्ष्म भोग है, सत्व गुण औ प्रणवका उकार अक्षर मात्रा हैं, औ तैजस नामका चैतन अभिमानी है, ये आठ तत्व स्वप्न अवस्थाके है परन्तु सो भी लिंग देह के जानै, सो लिंग देहके समग्रह तत्त्व यह ॥९०॥९१॥

ब्रह्मा अधिदेव और चित्त अध्यात्म, विषय स्मरण अधिभूत औ देवता नारायण अधिदेव अहंकार अध्यात्म, विषय अभिमान अधिभूत औ देवता रुद्र अधिदेव,—और ज्ञानेन्द्रिय श्रोत अध्यात्म, विषय शब्द अधिभूत औ देवता दिगपाल अधिदेव, और ज्ञानेंद्रिय त्वचा अध्यात्म, विषय स्पर्श अधिभूत औ देवता वायु अधिदेव और ज्ञानेन्द्रिय चक्षु अध्यात्म, विषय रूप अधिभूत और देवता सूर्य अधिदेव और ज्ञानेद्रिय जिव्हा अध्यात्म, विषय रस अधिभूत, औ देवता वरुण अधिदव और ज्ञानेंद्रिय घ्राण अध्यात्म-विषय गंध अधिभूत औ देवता अश्वनीकुमार अधिदेव और कर्मेइन्द्रिय वाक अध्यात्म, विषय वाक्य अधिभूत औ देवता अग्नि अधिदेव और कर्मेन्द्रिय पाणि अध्यात्म, विषय ग्रहण त्याग अधिभूत औ देवता इन्द्र अधिदेव कर्मेंद्रिय पाद अध्यात्म, विषय गमन अधिभूत औ देवता उपेन्द्र अधिदेव और कर्मेंद्रिय उपस्थ अध्यात्म, विषय रति विलास अधिभूत

औ देवता प्रजापति अधिदेव और कर्मेंद्रिय गुदा अध्यात्म, विषय मल त्याग अधिभूत औ देवता यमराजा अधिदेव–यह त्रिपुटी से स्वप्न अवस्थामें तैजस भोक्ता है सो स्वप्न अवस्था यह ॥८९॥

स्वप्न अवस्था ॥ दोहा ॥

स्वप्न अवस्था कंठ बसै, मध्यमा वाक बखान।
इच्छा शक्ति सूक्ष्म भोग, सत्वगुण पहिचान॥९०॥
उकार अक्षर सो मात्रा, अरु तैजस अभिमान।
ये आठ तत्व जो स्वप्न के, लिंग देहके जान॥९१॥

टीका—हे शिष्य सूक्ष्म देहकी स्वप्न अवस्था कहिये है सो अवस्था को स्थान कण्ठ में हैं मध्यमा नामकी वाणी अरु इच्छा शक्ति है, मनोमय सुख दुःख सूक्ष्म भोग है, सत्व गुण औ प्रणवका उकार अक्षर मात्रा हैं, औ तैजस नामका चैतन अभिमानी है, ये आठ तत्व स्वप्न अवस्थाके है परन्तु सो भी लिंग देह के जानै, सो लिंग देहके समग्रह तत्त्व यह ॥९०॥९१॥

लिंग देहके समग्र तत्व ॥ दोहा ॥

अपंचिकृ पच भूतके, पचीस तत्व जाण ।
तामें आठ धरि स्वप्न के, तेतिस लिंग प्रमाण ॥६२॥
लिंग देह और अवस्था, कह्यो तोहिं निर्धार ।
पुनि त्रिपुटी भी कही, अबकी पूछ विचार ॥६३॥

टीका—अपंचिकृत महापञ्चभूतनके पचीस तत्व और ताके विषे आठ तत्व स्वप्न अवस्था के मिलाकर आ तेंतीस तत्व हुए सो लिंगदेहका प्रमाण कहिये स्वरूप कहे हैं, और हे शिष्य लिंगदेह तथा स्वप्न अवस्था सो निरधार करके ताकूं कहे, पुनि तैजसके भोगकी त्रीपुटी भी कहि आये, अब तेरा जो पूछनका होवे सो विचार करके पूछहु, ॥६२॥६३॥

शिष्योवाच ॥ दोहा ॥

भगवन् दोनों देह की, और तत्व जु बात ।
विस्तारसें वर्णन करी, मोहि कहो साक्षात् ॥६४॥

श्री गुरूतीन गुणसे हुये तत्व ॥ दोहा ॥

पंचभूतनके सत्वतें, पंच सत्व पंच ज्ञान।
तमोगुणातैं विष पांच, राजसतैं कम प्रान ॥६५॥
स्वरूप सूक्ष्म देहको,सुणायो तोकूं शिष्य।
सो दृष्य मृगतृष्णा, अल्प रूप अविश्य ॥६६॥
तातें द्रष्टा तू भिन्न हे, सच्चिदानन्द स्वरूप।
याते छड्‌लिंग वास्ना, सो भ्रांति भवकूप ॥६७॥

टीका—आकाशादिक जो पांच भूत हैं, ताके एक एक भूतके तीन तीन भाग होवै है, सत्वगुण-रजोगुण औ तमोगुण, थामें सत्वगुणसे पांच सत्व कहिये अन्तःकरण औ पांच ज्ञानइन्द्रियां उत्पन्न होवै है, और रजोगुणसे पांच कर्मेन्द्रियां, तथा पांचप्राण उत्पन्न होवै; है और तमोगुणसे पांच विषय उत्पन्न होवै है—सत्वगुण तें अन्तःसरण, मन, बुद्धि, चित्त अहंकार औ ज्ञानेन्द्रियां श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जीहा, घ्राण ये दश होवै है और वाक् वाणी, पाद, मेढ्र, गुदा

तथा व्यानवायु, समानवायु, प्राणवायु, अपान वायु, ये दश रजोगुणसे उत्पन्न होवे है, और शब्द स्पर्श रूप, रस, औ गन्ध ये पांच विषय तमोगुणसे होवे है—हे शिष्य तोकूं स्थूल देह सूक्ष्म देहके स्वरूप सुणाइ दिये, सो अरु मृगतृष्णाके जलके समान दृश्य कहिये प्रतीत अवश्य होवे है, ताका द्रष्टा कहिये देखने वाला सो तिनतें भिन्न तू सत् चित् आनन्द रूप है, इस वास्ते लिंग वा स्नाका भी त्याग कर दे काहेतें ? सो लिंग देह भी महाभ्रांति रूप भवकूप कहिये जगत रूप कुआं है, यातें त्याग दे। और कारण देह सें होते हैं ॥९५॥९६॥९७॥

शिष्योवाच ॥ दोहा ॥

स्थूल तन अरु लिंग देहू, जो उपजत विनशात् ।
ताको हेतु कौन कह्यो, सो कीजे मख्यात् ॥९८॥

गुरोत्तर ॥ सोरठा ॥

सुनहु शिष्य मम बात, भाखों तीसरे तनकी ।
जहां उपजे विनशात्, सो कारण ह्वि देहका ॥९९॥

पूनि कहत अज्ञान, आवरण अविद्या भी यह ।
और जग उपादान. माया निदान एक ही ॥१०८॥

टीका—हे शिष्य तेरा यह कहना है कि स्थूल देह औ सूक्ष्म देह सो कौन सी वस्तु विषे उत्पन्न होवै है और लय होवै है ताको जो कारण होवै सो कहो, ताका उत्तर यह, हे शिष्य तू मेरी वार्ता सुनहु सो तीसरे देहकी है, जो वस्तु विषे, स्थूल और सूक्ष्म ये दोनों देहकी उत्पत्ति, लय होवै है, ताका नाम कारण देह कहे हैं, सो कारण देह, स्थूल देद औ सूक्ष्म देह ये दोनो, देहके पितारूप औ पिता मह रूप है, काहेतें ? स्थूल देहकी उत्पत्ति सूक्ष्म देहसे होती है औ सूक्ष्म देह की उत्पत्ति कारण देहसे होती है यातें कारण देह सो दोनों देहको हेतु है, सो आगे लय चिन्तन में प्रतिपादन करेंगे—पुनि अज्ञान तथा आवरण अरु अविद्या और ज त् का उपादान सो माया एक ही वस्तु कूं निदान भी कहे हैं, काहेतें जाके विषे जगत् कार्य होवै है यातें कारण अरु स्वरूप कूं आवरण कहिये आच्छादान होवैसें

अज्ञान कहिये है, और घटकूं मृतिका समान होने से उपादान तथा निदान जैसे घटपारथी विषे इन्द्र-जाल के समान तैसे प्रपंचरूप शुद्ध चैतन विषे प्रतीत होनेसे माया औ ब्रह्म विद्यासे निवृति होनेसे अविद्या कहे हैं, सो ब्रह्मकी शक्ति है, जैसे पुरुष में सामर्थ्य ॥६८॥६६॥१००॥

शिष्योवाच ॥ दोहा ॥

स्थूल सूक्ष्म देहनको, कारण कहिये जेह।
सोइ देह मेरा सही, यामें नहीं सन्देह ॥१०१॥

श्री गुरूरुवाच ॥ दोहा ॥

पिता पुत्र की जातिका, भाखत वेद अभेद।
सो सगरे सिद्धांत में, पुराण स्मृति समेद ॥१०२॥

टीका—हे शिष्य तू कारण देह कूं जो अपना मानता है, सो पनै नहीं, काहेतें ? पिता औ पुत्र कीजातिका अभेद सो वेद कहते हैं, तैसेही सम्पूर्ण सिद्धान्त में भी अभेद है, पुराण, धर्मशास्त्र, मीमांसा

और लोक व्यवहार में भी पिता औ पुत्रकी जाति का अभेद कहिये है, ऐसे स्थूल देह सूक्ष्म देह औ कारण देह ताका भेद नहीं, यातें कारण देह भी तेरा नहीं ।।१०१।।१०२।।

शिष्योवाच ॥ दोहा ॥

भगवन् कारण देह जो, बरणी करो प्रकाश।
संदेह जावै चित्त का, होवे मन हुलाश ।।१०३।।

श्री गुरू—कारण देह ॥ कवित ॥

सुषुप्ति अवस्था को हिरदेमें निवास कहे।
पश्यंतीवाणी भोग प्रवीविक्तहु मानिजे ।।
अज्ञान शक्ति तमोगुण, सुषुप्ति अवस्था में।
मकार अक्षर मात्रा तहा पहिचानिजे ।।
प्राज्ञ चैतन अभिमानि सुषुप्ति अवस्था का।
जड गुण प्रभावतें नहीं ज्ञान जानिजे ।।
यह आठ तत्वनको कहत कारक देह।
अब प्राज्ञ चैतन की त्रिपुटी बखानिजे ।।१०४।।

टीका है शिष्य कारण देहका जो स्वरूप है ताकू सुषुप्ति अवस्था कहे है, ता सुषुप्ति अवस्था को हृदयस्थान है, परयं तीवाणी औ प्रविविक्त भोग है, जैसे जाग्रतमेंऔ स्वप्नमें पदार्थ होवे है तैसे सुषुप्ति विषे पदार्थ नहीं यातें अज्ञान शक्ति सुषुप्तिमें है और तामस गुण है औ मकार अक्षर सो मात्रा है औ प्राज्ञ चैतन सो अभिमानि है और जड़गुण के प्रभावसे सुषुप्ति विषेज्ञान होवे नहीं औ निद्रासे जागके ज्ञान की वार्ता कहता है कि आज में सुखसे सोता था काहेतें ? सुषुप्ति काल में अंतःकरण इंद्रियन का हिरदे स्थान में लय होवे है यातें पुरुष उंघते उठके सुषुप्ति की वार्ता जाग्रत में कहता है की आज मैं सुख से सोया हुवा कुछ भी नहीं जाणता था यातें सुषुप्ति का ज्ञान जागत् में कहता है यहा कोई ऐसा कहे है की सुषुप्ति कालमें इंद्रियां बिना ज्ञान कैसे होवे ताका उत्तर यह सुषुप्तिमें इन्द्रियां तो है नहीं परन्तु जो साक्षी है ताकी वृत्ति अनुभव

करति है सो आत्मा की वृत्ति सुख के अनुभव की वार्ता जाग्रत में करति है–जैसे नगृके विषे मध्यरात्रि के समय में चौकीदार होवै है सो चौकीदारकू किसी पुरुष ने प्रातःकाल में पूछा कि आज रात्रि कौन था, चौकीदार कहे कोई नहीं था, तहां जो कोई नहीं था यो झूठ है काहेतें ? खुद चौकीदार था तैसे सुषुप्ति विषै साक्षी है सो साक्षी की वृत्ति सुषुप्ति का जो अनुभव सो जाग्रत में कहे है ये आठ तत्वकूं कारण देह कहे है और जैसे विश्व के भोग की औ तैजसके भोग की त्रिपुटी है तैसे प्राज्ञके भोग की भी त्रिपुटी कहिये है सो यह ॥ १०४ ॥

प्राज्ञभोग त्रिपुटी ॥ सवैया ॥

जैसे भोग विश्वके औ तैजस के।
तैसे भोग प्राज्ञ के भी माने है॥
चैतन सहित वृति अविद्या की।
ताकूं यांहां अध्यात्म ही गांने है॥

अज्ञानतें आवृत जो आनन्द सो।
इहा अधीभूतहु वखाने है ॥
मायाविषे चेतन का आभास जो।
सोही ईश अधीदेव ठाने है ॥१०५॥

टीका—जैसे विश्व स्थूलका भोक्ता है और तैजस सूक्ष्म का भोक्ता है तैसे प्राज्ञ आनंद भोक्ता कहिये है, सो प्राज्ञकी त्रिपुटी का स्वरूप यह चेतन के प्रतिबिंब सहित जो अविद्या की वृत्ति, सो अध्यात्म कहिये है, अज्ञान से आवृत जो स्वरूप आनंद सो अधीभूत कहि है, औ माया विषे जो चेतन का आभासा, सो ईश्वर अधीदेव कहिये है इस रीति से विश्व सो बहिष्प्राज्ञ है, औ तैजस अंत प्राज्ञ है औ प्राज्ञप्रज्ञान घन है, काहेतें? जाग्रत, स्वप्न के जितने ज्ञान है, सो सारे सुषुप्ति विषे, घन कहिये एक अविद्याकार हो जावे है, याते प्राज्ञ प्रज्ञान घन कहिये है, और आनंद भुक् भी यह प्राज्ञकू श्रुति कहे है, काहेतें? अविद्या

से आवृत जो आनंद है, ताकूं यह प्राज्ञ भोगै है. यातें आनन्द भूक कहिये है—अब तीन देह के पंचकोष यह ॥१०५॥

पंचकोष प्रकार ॥ दोहा ॥

अन्नप्राणमानोविज्ञान, आनंदमयअसपांच।
सुआछादानआत्मके, अरुआतमनिरआंच॥१०६॥
शिष्य सुनायो तोहि में. देह कोष प्रकार।
अब तेरी जो भावना. सो तुपूछ विचार ॥१०७॥

टीका—स्थूल सूक्ष्म कारण ये तीन देह के पंचकोष है, अन्न कहिये अन्नमय कोष प्राण कहिये प्राणमयकोष, मानो कहिये मनोमय कोप, विज्ञान कहिये विज्ञानमय कोष और आनन्दमय कोष ये पांच कोष है, सो तीन देहके है—स्थूल देहका अन्नमय कोष एक है सूक्ष्म देहके प्राणमय, मनोमय औ विज्ञामय कोष ये तीन है, और कारण देहका भी एक आनंदमय कोष है—तिनमें अन्नमय कोषका स्वरूप यह—स्थूल देह कूं ही अन्नमय कोष कहे है,

स्थूल देहके माथा कूं, शिर कहे है और दहिनेहाथ कूं दक्षिण भुजाकहे है, औ बांयें हाथ कूं वाम भुजा कहें हैं, और कंठसे कटि पर्यंत कूं आत्मा अथवा मध्य कहिये है, और पैर कूं पूंछ १ आधार २ अधिष्ठाता ३ प्रतीष्ठंत ४ और अधीष्ठान ५ ये पांच नाम कहे है और असमसे स्थित रहे है याते अन्नमय अरु आत्म कूं आच्छादान करे याते कोष, जैसे तलवारके मियान कू कोष कहे है, तैसे ही श्रुतिसारमें स्थूल देह कूं अन्नमय कोष कहिये है ॥१॥ प्राण शिर, व्यान दक्षिण भुजा, समान वायु वाम भुजा, उदान आत्मा और अपान आधार ये पांच प्राण तथा पांच कर्मइंद्रियां ताकूं प्राणमयकोष कहे है, और कोइ पांच उपप्रण कहे तो कर्मेंद्रिया नहीं ॥ २ ॥ यजुर्वेद शिर ऋग्वेद दक्षिण भुजा, सामवेद वाम भुजा, उपदेश आत्मा, अथर्व वेद अधीष्ठान औ पांच कर्मइंद्रियां तथा एक मन, ताकूं मानोमय कोष कहे है ॥ ३ ॥ श्रद्धा शिर, सत्यता दक्षिण भुजा, रीति वाम भुजा योग आत्मा और आनंद अधीष्ठाता, पांच ज्ञान-

इंद्रिया तथा एक बुद्धि ताकूं विज्ञानमय कोष कहे है ॥ ४ ॥ प्रिय शिर, मोद दक्षिण भुजा, प्रमोद वाम भुजा, आनन्द आत्मा ब्रह्म प्रतिष्ठित तहां जैसे कोइ पुरुष कूं किसी अनुकूल पदार्थका नाम सुणाते ही जौ आनंद होवै, सो आनन्द कूं प्रिय कहे है, औ ता पदार्थ की प्राप्ति होनेसे जो आनंद होवै सो मोद है, और सो पदार्थ कूं भोगनेसे जो आनन्द होवै, ताकूं प्रमोद कहिये है, ताका नाम आनंदमय कोष है ॥ ५ ॥ ये पांच कोष आत्मा कूं आछादान कहिये ढांकते हैं, तथापि आत्मा तो निरआंच कहिये आवरण रहित है—जैसे तलवार का आवरण मियान होवै तो भी तलवार कूं अच-रण नहीं, तैसे आत्मानन्द ढकाये हुके भी सर्व प्राणि विये, प्रतीत होवै हैं, काहेते ? आनंद नाम सुखका है सो सुखकी प्रतीति अनेक प्रकारसे होती है, हांसि विनोद और पदार्थ भोगनेसे प्रसिद्ध है, हे शिष्य तीन देह पंचकोष सहित मैंने तोकूं सुणाये अब तेरी जो आनन्द होवै सो प्रकट ॥१०६॥१०७॥

शिष्य प्रश्न ॥ दोहा ॥

कहो मेरा देह कौन कहा हमारा नाम ।
कौन देश वासा वसे पूनि कहिये धाम ॥१०८॥

श्रीगुरोत्तर ॥ दोहा ॥

नामरूपसु नाशवान, तूसब इनको धाम ।
सब घटमें व्यापिरह्यो, आप अरूप अनाम ॥१०९॥

टीका हे शिष्य तेरा यह कहना है कि स्थूल देहादिक तीनों देह तो मेरे नहीं परंतु और कोई देह जो होवै ता कहो और ताका नाम अरु कौन लोकमें बसे है और कौनसी पुरि धाम है ताका उत्तर यह पूर्व जो चौदह लोक कहि आय है ताके विषे, कोई भी तेरा लोक नहीं और धाम इंद्रपुरि आदिक धाम भी नहीं और समष्टि ब्रह्माण्ड औ व्यष्टि रूपि जो वैराट औ हिरण्य गर्भ आदिक देह सो भी तेर नहीं याते नाम भी नहीं कारनतें ? जो देह औ ताका नाम सो नाशवान है औ तेरे स्वरूप

वेषे, उपजे, विनशै है, याते सब इनका तू धाम है इस रीतिसे सर्वचर अचर भूत प्राणि विषे तू ही व्यापी रह्या है सो तू नाम रूप रहित अरूव अनाम है ॥१०८॥१०९॥

शिष्योवाच ॥ दोहा ॥

भगवनब्रह्मतुमभाखियों, अरुहोयविषयभन ।
सो कैसे करिहोतहै, कहोताका प्रमान ॥११०॥

श्री गुरू अज्ञान प्रकार ॥ दोहा ॥

जब त्यागे बुद्धिआत्मा, तबहोय विषय आस ।
तातें चंचल होत है, सुख नश आभास ॥१११॥
सो पदार्थ पावै जब, क्षणिक ताप नशात ।
जो आनंद तहां उपजे, सो विषयतें जनात॥११२॥
ताकूं मिथ्या जीव कहें, शिव है मूल स्वरूप ।
यातेंमिथ्यात्यागकरि, लखआत्माब्रह्मरूव॥११३॥

टीका—बुद्धि जब आत्मानन्द स्वरूप का त्याग करती है तब ही बुद्धिमें विषय की आस्था होती

है औ तातें चंचल होवै है, याते आत्मा के स्वरूप सुखका भाग होता है, औ सो बुद्धिकूं जब पदार्थ प्राप्त होवै, तब सो पदार्थ भोगने सें ताप की निवृत्ति औ सुखकी प्राप्ति होवै है, सो क्षणमात्र सुख रहे है, याते मिथ्या आनन्द है, ताकूं जीव कहिये है, आनन्द सर्व एक है, औ विषय म आनन्द है नहीं, जो विष में आनन्द होवै तो फेर विषय नहीं भोगणा चाहिये औ सुषु सिमें विषय है नहीं तो भी आनन्द होवै है सो नहीं हुवा चाहिये; यातें विषय में आनन्द नहीं और आत्माका जो आभास है सो, विषय भोगने से प्रतीत होवै है, इस रीतिसे विषयानन्द कूं जीव कहिये है, सो जीव मिथ्या और आत्मासत्य शिव है यातें मिथ्या जीवत्वका त्याग और आत्माका आङ्गीकार॥११०॥से॥११३॥

शिष्य प्रश्न ॥ दोहा ॥

आभासकू मिथ्यकह्यो, नआत्मक्रियावान।
तू भोगे को भोगवान, कहो ताहिं वखान ॥११४॥

टीका— हे भगवन् तुमने जीवकूं तो मिथ्या कथ्यां और आत्मा क्रियावाला नहीं यतें जीव अरु आत्मा तौ भोगने वाले और भोगाने वाले बनै नहीं, तउ भोगने वाला औ भोगाने वाला किस कूं मानेंगे सो कहिये ॥११४॥

श्री गुरोत्तर ॥ चौपाई ॥

चैनन के चव भेद बखानी ।
दोआभास रूसाक्षी मानी ॥
जीव ईश आभासहु गानी ।
आतम ब्रह्म द्वै साक्षी जानी ॥११५॥
भोग्य भोग जीवनकूं चहिये ।
ईश भोगावन हार कहिये ॥
आत्म सदैव अभोक्ता रहिये ।
ब्रह्म चैतन शुद्ध मानि लहिये ॥११६॥

टीका—हे शिष्य एक रस अखण्ड चैतन के चारपाद है ताका वर्णन एक चैतन के चारपाद

कहिये है, जीव ईश्वर आत्मा औ ब्रह्म तिनमें दो आभास है, औ दो साक्षी है, जीव और ईश्वरकू आभास माने है, और आत्मा तथा ब्रह्मकू साक्षी कहिये है, और पुण्य पाप रूप जो भोग्य है, ताके फल रूप सुख दुःख सो भोग कहिये है, ताकू भोगने कू जीव चाहता है, औ ताकू भोगाने वाला ईश्वर है और आत्मा सदा अक्रिय अभोक्ता रह है, औ ब्रह्म चेतन कू तो किन्तु शुद्ध माने ॥११५॥११६॥

शिष्योवाच ॥ दोहा ॥

अखड एक चेतन के, भेद बखाने चार ।
सो प्रभो किस भांतकी, कहिये ते विस्तार ॥११७॥

श्री गुरू आकाशवत चेतन ॥ दोहा ॥

सुनहु चार आकाश के, कहत भेद विस्तार।
ऐसे पुनि चेतन के, भेद चार प्रकार ॥११८॥

घटाकाश वर्णन ॥ दोहा ॥

खाली घटमें खोजले, जो अंतर अवकाश।
विज्ञान पंडित वरणवै, ताकूं घट अवकाश ॥११६॥

टीका—हे शिष्य जल रहित जो खाली घट होवै है, ताके विषे, जो अवकाश सोई घटाकाश, श्रेष्ठ पंडित कहे है, ॥११७॥११८॥११६॥

जलाकाश ॥ दोहा ॥

पावस पूरित घट विषे, जो सस्मानि आभास।
घटाकाश युत विज्ञजन, भाखत जल आकाश॥१२०॥

टीका—पावश कहिये जल, सो जल पूरे हुए घट के विषे, जो बाहर के आसमान का आभास प्रतीत होवै, सो और घट के भीतर का अवकाश युत कूं ज्ञानवान जन जलाकाश कहे है ॥१२१॥

मेघाकाश वर्णन ॥ दोहा ॥

बादर फैलत बहुत सा, तामें व्योमा भास।
सो दोनों कूं कहत है, मुनिजन मेघाकाश ॥१२१॥

टीका—बादर कहिये मेघ, सो बहुत सा फैल आता है, ताके भीतर की आकाश और व्योम कहिये, बाहर की आकाश का आभास जो मेघके जल विषे पड़ता है सो तिन दोनों कू मुनि कहिये ज्ञानी जन मेघाकाश कहे हैं ॥१२१॥

महाकाश वर्णन ॥ दोहा ॥

ज्यु बाहर त्युं भीतमें, एकही रस असमान।
महाकाश ताकू कहें, कोविद बुद्धि निधान ॥१२२॥
चार भाँति आकाश की, भनी वेद अनुसार।
अब चेतनकी कहत हूं, भाँति चार प्रकार ॥१२३॥

टीका—जैसे आकाश एक रस व्यापक बाहिर है, तैसे ही भीतर में व्यापक है, सो आकाश कू, बुद्धि के निधान पंडित महाकाश कहे है, ये चार प्रकार का आकाश वेद अनुसार कहि आये, अब चार प्रकार के चेतन कहते हैं।

कूटस्थ चैतन वर्णन ॥ दोहा ॥

बुद्धि अरु अंश अज्ञान को, जो आधार चैतन्य ।
घटाकाश नाईं कहे, वे कूटस्थ अजन्य ॥१२४॥

टीका—समष्टि अज्ञान कूं संपूर्ण अज्ञान कहे है और व्यष्टि अज्ञान कूं अंश अज्ञान कहे है, ता संपूर्ण अज्ञान सहित बुद्धि में, और अंश अज्ञान सहित बुद्धि में जो आधार रूप चैतन्य है, ताकूं घटाकाश की नाईं कूटस्थ कहे है, अंश अज्ञान सुषुप्ति ॥१२४॥

जीव वर्णन ॥ दोहा ॥

मलीन मन अज्ञान विषे, जो चैतन प्रतिबिंब ।
वदे जीव विद्वान तिहिं, जल नभ तुल्य सबिंब १२५

टीका—जा मन विषे, रजोगुण, तमोगुण प्रधान होवे सो मलीन मन कहिये है, और देहादिक में अहंता सो अज्ञान है, ऐसे मन विषे जो चैनत का प्रतिविम्ब, औ चैतन संयुक्त कूं जलाकाश तुल्य विद्वान जीव कहे है, तहां ॥१२५॥

शिष्य शंका ।। दोहा ।।

आत्मका प्रतिबिंब जो, मन विषे किस भांत।
सो चेतनका जड़ विषे, प्रभू करो प्रख्यात ।।१२६।।

टीका—हे प्रभू आत्मा का प्रतिबिम्ब, सो मन के विषे कैसे बने, क्युंकी आत्मा चेतन है और मन जड़ है, यातें सो प्रगट करो ।।१२६।।

श्री गुरू समाधान ।। दोहा ।।

पीत पुष्प माथे धरे, श्वेत मणि होत पात।
यों चेतन आभास की, जड़ मन विषे प्रतीत ।।१२७।।

टीका—हे शिष्य जैसे पीतरक्त वाला पुष्प होवै, सो उज्वल मणि के नीचे धरने से मणि विषे पीत दमक प्रतीत होवै, तैसे आत्मा का आभास भी मन विषे सिद्ध होवै है ।।१२७।।

ईश वर्णन ।। दोहा ।।

माया में आभास जो, सो आधार सयुक्त।
मेघाकाश के तुल्य ते, ईश मानिये मुक्त।।१२८।।

टीका—माया के विषे, चैतन का आभास और माया तथा आधार चैतन ये तीनों के युक्तकूं मेघाकाश के समान ईश्वर कहे है, सो ईश्वर मुक्त कहिये है ॥१२८॥

ब्रह्म वर्णन ॥ दोहा ॥

व्यापक बाहिर भीतमें, जो चैतन भरपूर।
महाकाश तुल्य सोई ब्रह्म, नहीं नेरे के दूर॥१२६॥
चार भांति चैतन कह्यो, मिथ्या तामें जीव।
सो ताप त्रिविधि भोगवे, अज्ञान तें अशीव॥१३०॥

टीका—जैसे बाहिर में एक रस भरपूर व्यापक चैतन है, तैसे प्राणियों के भीतर में भी एक रस भरपूर व्यापक चैतन है, ताकूं महाकाश के तुल्य ब्रह्म कहिये है, सो ब्रह्म नेरे नहीं और दूर भी नहीं। काहेतें ? जो अत्यन्त दूर होवै सो दूर कहे है, और समीप कूं नेरे कहे है, औ ब्रह्म तो सर्व का आत्मा है, यातें नेरे दूर नहीं कहिये है,—ये चार प्रकार के चैतन कहि आये, तामें जीवपना

सो मिथ्या है, काहेतें ? सो अपने स्वरूप अज्ञानत तीन प्रकार के ताप भोगै है यातें स्वरूप अज्ञानतें आश्रित कहिये जीवत्व है, इस रीति सें जीव मिथ्या कहे हैं ॥ १२६ ॥ १३० ॥

निर्गुणवस्तु निर्देशरूप मंगल ॥ दोहा ॥

ब्रह्मा विष्णु महेश देव, सकल धरत जो ध्यान ।
वे साची यह बुद्धि को, जामैं नहीं अज्ञान ॥१॥

सगुणवस्तु वन्दनरूप मंगल ॥ दोहा ॥

शेष गणेश महेश यम, शक्ति चन्द्र वरुण नाम ।
नमो देवीरु देवता, ग्रंथ सिद्ध यह आस ॥२॥

श्रीगुरु वन्दनरूप मंगल ॥ दोहा ॥

जगजाल गुरु काटके, दे देउ सुख अपार ।
पढ़े सुण अस ग्रंथ तिंहि ले सच्चिदानंद सहार ॥३॥

काव्यनेम ॥ दोहा ॥

लघु गुरु गुरु लघु होत है, वृन हेत उचार ।
रू हे अरु की ठौर में, अवकी ठौर वकार ॥४॥

संयोगी क्ष क न परखन्, न ट वर्ग ण कार ।
भाषामें ऋ ऌ ह नहीं, और तालव्य शकर ॥२॥
तीनगुरुतेंमगनभया, नगनहुवालघुतीन ।
आदिगुरुसेंभगनलगा, यगनआदिलघचींन ॥३॥
अंत लघुता पाइ तगन, सगण अंत गुरू मान।
रगनअंतरजोलघुता, सोइजगनगुरुजान ॥४॥

टीका—इतने अक्षर भाषामें नहीं, कोई लिखे तो कवि अशुद्ध कहे, क्ष के स्थानमें छ, ख के स्थानमें ष, णकार के स्थानमें न कार ऋऌ के स्थानमें री, लि श कार के स्थान में सकार भाषामें रखने योग्य है, वृत्त अर्थात् छन्द शुद्ध होने के वास्ते लघुका गुरु और गुरू कालघु उच्चारण किया जाता है, तथा अरुके स्थानमें रु, अब के स्थान में घ, कहे है, इत्यादिक और चौसठ मात्रा चौपाई और अड़-तालीश दोहेमें अरुदोहेके चरण उलटे धरे ताकूं सोरठा कहे हैं, और एकादश गण कवित अरु आठ

गण सवैया छंद सामान्य अपर्यंत होते है और तीन गुरू ऽऽऽ तें मगण होता है, औ तीन लघु ।।। तें नगण होता है, आदि ऽ।। गुरुनें भगण होता है, आदि लघु ।ऽऽ तें यगण होता है, अन्त ऽऽ। लघु तें तगण होता है, और अन्त गुरू ।।ऽ तें सगण होता है, और मध्य लघु ऽ।ऽ तें रगण होता है, और मध्य गुरू ।ऽ। तें जगण होता है १ २-३-४

शिष्योवाच ।। दोहा ।।

स्वामी सुणी मैं चहत हूं, तीनताप की रीत ।
त्यागौंताहिसमजके,मोगु सुखमैंवनिचित ।।१२१।।

श्रीगुरू त्रिविध ताप ।। दोहा ।।

जौर फोडे फादले, सो अध्यात्मताप ।
अधीभूत भय अन्यते, अंतरमें सन्ताप ।।१२२।।
अणधारे जो आ चढे, गृह पीतरन की पीर।
अधीदैव अस ताप सो, उद्वेग मन अधीर ।।१२३।।

प्रारब्ध के रे भोग जो, सब जन के शिर होय ।
ज्ञानी भोगै ज्ञान सैं, अज्ञानी भोग रोय ॥१३४॥

टीका— हे शिष्य तीन प्रकार के ताप होवै है–अध्यात्म १ अधीभूत २ और अधीदेव ३। शरीर-में बुखार औ फोडे तथा फोदले आदिक जो पीड़ा होवै सो अध्यात्म ताप कहेहै, औ चोर सर्प आदिकन सें जो भय होवै सो अधिभूत ताप कहे है और गृह पित्रन प्रेत आदिक सें जो दुःख होवै, सो अधिदैव ताप कहे है-ये तीन प्रकार के ताप कहिये दुःख देते है, याते मन कूं उद्वेग रखै और अथिर करते हैं सो प्रारब्ध के भोग सर्व प्राणियों के शिर होवै है, तामें ज्ञानवान पुरुष है सो ज्ञान सें भोगै है और अज्ञानि रोते हुये भोगै है ॥१३१॥ सें ॥१३४॥

शिष्य प्रश्न ॥ दोहा ॥

जन्म मरण काको कहत, कौन अन्योदक पान ।
किनको धर्म शोक मोह, को है ब्रह्म समान ॥१३५॥

टीका—हे गुरु कौन जन्मता और मरता है और कौन भोजन खावे सो जल पीवे है और शोक तथा मोह किन का धर्म है और ब्रह्म समान कौन है सो कहो ॥१३५॥

श्रीगुरु षटउरमी ॥ दोहा ॥

जन्म मरण स्थूल देहकू, भूख पियास प्राण।
शोक मोह मन ठानिये, आत्म ब्रह्म प्रमाण॥१३६॥

टीका—हे शिष्य जन्म और मरण सो देह का धर्म है और भूख तथा पियास सो प्राण का धर्म है और शोक और मोह सो मन का धर्म है और जो आत्मा सो ब्रह्म प्रमाण है ॥१३६॥

शिष्योवाच ॥ दोहा ॥

चेतन के जो भेद चव, कैसे होय अभेद।
जाते मम सशय मिटे, सो भाखो गुरु वेद॥१३७॥

श्री गुरु भाग त्याग लक्षणा ॥ दोहा ॥

शिष्य मन सावधान हुइ, सुनहु प्रसग ऐन।
जहती आदिक लक्षणा, भाग त्यागकी सैन॥१३८

टीका–हे शिष्य तू सावधान मन हुइ के सुनहु, यह प्रसङ्ग उत्तम है, जहती आदिक लक्षणा तीन प्रकार की है जहती अजहती और जहदजहती लक्षणा सो भाग त्याग की प्रक्रिया है तिनमें जहती लक्षणा की रीति यह ॥१३८॥

जहती लक्षणा ॥ चौपाई ॥

ज्हां गंगामें ग्राम बखानी।
ताके त्रट जहती ले जाना॥
गंगा पदको त्याग मन आना।
पुनि प्रवाह तजन पीछानी॥१३६॥

टीका–जहाँ गङ्गा में ग्राम ऐसा सुनै तहां भाग त्याग लक्षणा है काहेते ? जैसे किसी ने कहा कि गङ्गा मै ग्राम है यह स्थान गंगा नदी के प्रवाह की मध्य ग्राम की स्थिति संभवै नहीं यातें गंगा नाम वाच्य औ ताका वाचार्थ प्रवाह वाच्य ये समुदाय वाच्य का त्याग करके देव नदी के सम्वन्धी किनारे पर, वाच्यार्थ ग्राम जहती लक्षणा कहिये है॥१३६॥

अजहती लक्षणा ॥ दोहा ॥

शोण धावन सुणे तहा, अश्व अजहती विचार।
अरु वाच्यको त्यागनहिं, अधिक लक्ष्यकू धार१४०

टीका—जहाँ शोण धावन सुणे तहाँ, अजहती लक्षणा अश्व कू जानै, औ वाच्य का त्याग नहीं, और लक्ष्य का अधिक ग्रहण करदेतें ? शोण नाम लाल रङ्ग का है, ताके विषे धावन कहिये दौड़ना बनै नहीं और लाल तथा रङ्ग ये दोनों वाच्य का जो वाच्यार्थ अश्व कहिये घोड़ा है ताके साथ तादात्म्य सम्बन्ध है सो वाच्य का छेदन करने से घोड़े का भी छेदन होवै यातें लाल रङ्ग वाच्य का त्याग नहीं और अधिक वाच्यार्थ घोड़े का ग्रहण सो अजहती लक्षणा है ॥१४०॥

जहदजहदी लक्षणा ॥ दोहा ॥

एक भाग त्याग करि, अन्य भाग एक धार।
जहदजहती सो लक्षणा, लक्ष्य हु लक्षणा विचार॥

माया उपाधि ईशकी, जीव अविद्या भाग ।
लक्ष्य चैतनशुद्धि विषे, दोनों वाच्य त्याग॥१४२॥

टीका—जहां एक वाच्य का त्याग होवै; और एक वाच्य का ग्रहण होवै, तहां जो वाच्यार्थ सोई जहद् अजहती लक्षणा है, काहेतें ? जैसे किसी ने उजैणिनगृ विषे ग्रीषमऋतु में उजैणि के राजा कूं देखा, फेर ताकूं हरिद्वार विषे, हेमन्तऋतु में संन्यासि देख के ऐसा कह्या, "सो यह" है, तहां भाग त्याग लक्षणा है, काहेतें ? उजैणिनगृ विषे ग्रीषमऋतु मे स्थित पुरुपकूं "सो" कह्या है, यातें उजैणिनगृ सहित और ग्रीषमऋतु सहित जो स्थित पुरुप है सोइ "सो" पदका वाच्यार्थ है, और हरिद्वार विषे, हेमन्तऋतु में स्थित पुरुष कूं "यह" कह्या है, यातें हरिद्वार सहित और हेमंतऋतु सहित जो स्थित पुरुष है सोइ "यह" पद का वाच्यार्थ है, और उजैणिनगृ ग्रीषमऋतु सहित जो पुरुष सोइ हरिद्वार हेमंतऋतु सहित है यातें यह समुदाय का वाच्यार्थ बनै नहीं; काहेतें ? उजैणिनगृ और हरि-

कार का विरोध है, तथा ग्रीषमऋतुका और हेमंत ऋतुका विरोध है, याते दोनों पदमें नय ऋतु जो वाच्य भाग है, ताका त्याग करके पुरुष मात्र में, दोना पद की भाग त्याग लक्षणा है, सो जहद जहती है ताकूं जहती अजहती लक्षणा कहिये है और माया उपाधि सहित चेतन ईश्वर पद वाच्य है, तथा अविद्या उपाधि सहित चेतन जीव पद वाच्य है सो दोनों वाच्य का वाच्यार्थ ब्रह्म चेतन है, याते माया सहित ईश्वर पणा तथा अविद्य सहित जीव पण ये दोनों वाच्य का ब्रह्मविषे त्याग कहिये है ॥ १५२ ॥ १५३ ॥

शिष्योवाच ॥ दोहा ॥

स्थूल सूक्ष्म कारण, तीनों जाने नेह ।
दीठे सगरे दु ख रूप इमि त्यागे सब तेह ॥१४३॥
अब अन्य कोइ देहकी, गाथ कहो गुरु देव ।
जानी त्यागूं ताहिकूं, लहु सदा सुखमेव॥१४४॥

टीका—हे गुरू स्थूल सूक्ष्म औ कारण ये तीनों देह तो मुझे ज्ञात हुये सो तो कैवल दुःख मूल है इस वास्ते ये तीनों कूं त्याग दिये। अब जो कोई अपर देह होवै तो तिनकी वार्त्ता होवै तो कहो यातें ताकूं भी जानके त्याग करूं और सदा सुख रूप आत्मा कूं जानूं।

श्री गुरूरुवाच ॥ दोहा ॥

जाते अज्ञान होताहै, ताहि बखानत ज्ञान।
महाकराणा देह सोइ, करले ताको भान ॥१४५
अज्ञान जातें आखियो, जानहु ताको रूप।
जब तिनहितै तेनशे, तब होतु रूप आनुप॥१४

टीका—जा वस्तुसें आज्ञानकी उत्पत्ति हो है, ता वस्तुका नाम ज्ञान कहिये है, पुनि ता महाकारण भी कहे है ताके विषे तु ऐसी भान क कि "सोह मैं हूं" और जातें अज्ञान की उत्पत्ति कहि आये ताका यह रूप है सो जानहुं और ति हिं ते तेनशै कहिये जब ज्ञानतें अज्ञानकी निवृ

होवै तब केवल उत्पति रहित स्वरूप होवै सो महा-
कारण का वर्णन यह—

महाकारण देह ॥ सवैया ॥

तूर्या अवस्था है मूर्धन माहीं,
परा वाणी वखानहु जी।
भोग आनद अदाव है ताहां,
ज्ञान शक्ति पहिचानहु जी ॥१४७॥
गुण आनन्दा भास उदय होवे,
मात्रा अमात्रा मानहु जी।
महाकारण अभिमानि सो तूर्या,
वे आत्मा साची जानहु जी ॥१४७॥

॥ दोहा ॥

आठ तत्व यह तूर्या के, त्रय देहों के थोर।
सगरे देही चारके, व्यासी भ्रम भव ठोर ॥१४८॥

ताके माही तूरया, साक्षी रूप चैतन्य ।
सूत्र मणि रूप आत्मा, सोई दृष्टा अजन्य ॥१४६॥

टीका—महाकारण देह की तूर्या अवस्था है सो अवस्था का स्थान मूर्ध में है और परानाम की वाणी है और आनन्दा दाब कहिये केवल निर्क्लेश आनन्द सो भोग है और किन्तु ज्ञान ही शक्ति है और जो आनन्दाभास कहिये आनन्द उदय सो गुण है और अकार उकार मकार ऐसा मात्र भाग तहां नहीं यातें अमात्रा तूर्या में कहे है और महाकारण अभिमानी रूप जो चैतन सोइ तूर्या है ताकूं ही आत्मा औ साक्षी जानना ये आठ तत्त्व तूर्या अवस्था के कहे तथा तीन देहन के अन्य ये चार देह के समुदाय जो बियासी तत्त्व सो भ्रमभव ठौर कहिये संसार का स्वरूप है सो संसार मणिका रूप है ताके विषे सूत्र की नाई चैतन आत्मा साक्षी रूप सो तूर्या है सो जन्म मरण रहित दृष्टा कहिये देखने वाला है वाकूं तूर्या कहे है काहेतें ? जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति ये तीन अवस्था ताके जो

अभिमानि विश्व तैजस प्राज्ञ सो चैतन है यातैं तीनों अवस्था विषे जो व्यापक चैतन है, ताकू चतुर्थ अवस्था का अभिमानि तूर्या कहे है, अब जीव ईश्वर के देहादिक वर्णन—

जीव ईश्वर के देहादिक ॥ दोहा ॥

जैसे देही जीव की, तैसे ईश वखाण ।
सो मायावी तू नहीं, तूर्या तीत प्रमाण ॥१५०॥

टीका—जैसे जीव के चार देह, चार अवस्था, चार मात्रा और चार अभिमानि है तैसे ईश्वर के भी चार देह चार अवस्था चार मात्रा और चार अभिमान कहिये है, जीव के देह, स्थूल, सूक्ष्म, अज्ञान और ज्ञान ये चार देह, अवस्था, जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तूर्या—ये चार अवस्था और मात्रा अकार, उकार, मकार और अमात्रा, ये चार मात्रा है, अभिमानि, विश्व, तैजस, प्राज्ञ और तूर्या ये चार अभिमानि है, ईश्वर के वैराट, हिरण्य गर्भ, अव्याकृत औ परलोक—ये चार देह उत्पत्ति, स्थिति,

प्रलय औ महाप्रलय—ये चार अवस्था है । विश्वानर, सूत्रात्मा, ईश्वर और अपर ब्रह्म ये चार अभिमानि कहिये है, और मात्रा ओं जीवकी सो ईश्वर की जानै—हे शिष्य सो ईश्वर भी मायावी है, यातें सो ईश्वर भी तू नहीं, तू किन्तु निर्वाण है और जो तूर्या तें पर—सो तूर्यातीत प्रतिपादन यह ॥१५०॥

तूर्यातीतोप्देश ॥ कवित्त ॥

तूर्या साची तो कोइ कहत है परन्तु ताहां ।
जू साच्य वस्तु होवै तू साची भले मानिये॥
सो तुरयतीत माहीं साच्य को संबंध नाहीं ।
यातें साची स्वरूप सो कैसे करी ठानिये ॥
जातें कारण साच्य नहीं तातें कार्य साचीन।
इमि साच्य साची दोनों नहीं पहिचानिये ॥
किन्तु इक शुद्ध चैतन सत्य सुख रूप है ।
स्वयं जोति सदा उदय एक रस जानिये ॥१५१॥

टीका—हे शिष्य पूर्व जो तूर्या साक्षी कहा सो तूर्यातीत विषे तर्या साक्षी ऐसा कहना क्यों नहीं काहेतें ? तूर्या साक्षी कोई कहे तो है परन्तु यहां तूर्यातीत विषे, जु साक्ष्यवस्तु दृश्य होवे तो साक्षी कहिये ताका देखने वाला भली प्रकार से मानिये भी तूर्यातीत विषे साक्ष्य का सम्बन्ध तो है नहीं, यातें साक्षी स्वरूप ऐसा कैसे करके कहें अर्थात् नहीं कहा जायगा, काहेतें ? साक्ष्य रूप कारण तो है नहीं, यातें साक्षी कार्य भी नहीं, इमि साक्ष्य साक्षी दोनों नहीं, केवल एक सत्य सुख रूप शुद्ध चैतन ही है, सो कैसा है, ज्योति स्वयं सदा काल उदय तेजोमय, एक रस जानहु हे शिष्य ताके विषे वृत्ति का लय कर, सो वृत्ति का वर्णन यह ॥१५१॥

वृत्ति प्रभा ॥ सवैया ॥

इक वृत्ति कहि फल व्याप्ति नाम।
दूजो नाम वृत्ति व्याप्ति कही है॥

तुर्यापर माहीं फल व्याप्ति नाही ।
वृत्ति व्याप्ति को भी लेश नही है ॥
नहीं इन्द्रिय विषय शब्दादिक ।
केणी वाणी कछु नहीं रही है ॥
शुद्ध चैतन जोति स्वयं प्रकाश ।
ज्युं को त्युं स्वरूप इक यही है ॥१५२॥

॥ दोहा ॥

तत्व मस्यादिक वाक्यन तें, होत अपरोक्ष ज्ञान ।
कदी ज्ञान होवे नहीं, तुलय चिंतन कर ध्यान ।१५३।

टीका—हे शिष्य एक वृत्ति का फल व्याप्ति नाम है और दूसरी वृत्ति का नाम वृत्ति व्याप्ति कहिये है ? यामें तूर्या परमांहि फल व्याप्ति वृत्ति की अपेक्षा नहीं और वृत्ति व्याप्ति लेश भी नहीं, और मन वाणी आदिक इन्द्रियन तथा शब्दादिक विषय भी नहीं, और श्रोता वक्ता भाव भी तूर्यातीत विषे रहे नहीं, काहेतें ? जो फल व्याप्ति है,

सो तो जैसे सूर्य के प्रकाश विषे दीपक किन्तु अकाम है, और वृत्ति व्याप्ति जैसे गृह के भीतर अन्धारे में प्रकाश वाली मणि स्थापित करके, ऊपर मृत्ति का पात्र ढांके, ताके माथे दण्ड प्रहार करे, तहां पात्र फूटते ही उजियारा हो जावै, तैसे वक्ता के मुख से "अहं ब्रह्मास्मी" ऐसा जिज्ञासु के श्रोत्रद्वार सुनते ही "मैं ब्रह्म हूँ" ऐसा अपरोक्ष ज्ञान होवै, सो वृत्ति व्याप्ति का क्षेत्र भी तुर्यातीत विषे नहीं काहेतें ? तुर्यातीत विषे, किन्तु शुद्ध चैतन जोति प्रकाश स्वय आनन्द स्वरूप ज्यूं का त्यूं एक अपने ही रहे है ताके विषे मन वाणी कहना सुनना कछु भी नहीं, सो भूमिका प्राप्ति विषे चार विघ्न होवै है, ताके निषेध का प्रयत्न करे, लय १ विक्षेप २ कषाय ३ रसास्वाद ४ आलस्यतें अथवा निद्रा करके, वृत्ति के अभाव कू लय कहिये है, ता लय तें सुषुप्ति समान अवस्था होवै है ब्रह्मानन्द की भान होवै नहीं, यातें निद्रा आलस्यादिक निमित्त से जब वृत्ति

का अपने उपादान अन्तःकरण में लय होता दीखै तब योगी सावधान हुइ के निद्रादिकन विरोधि का निरोध करके, वृत्ति कूं जगावै, इस रीति से लय रूप विघ्न विरोधी जो निद्रा आलस्य निरोध सहित, वृत्ति के प्रवाह रूप जाग्रण ताकूं, गौड़ पादाचार्य चित्त सम्बोधन कहे हैं, औ विक्षेप का अर्थ, जैसे बिल्ली अथवा बाज की भय से डर के चींटी के गृह में प्रवेश करे, तहां भय व्याकुलता से तत्काल स्थान देखै नहीं—याते बाहर आके फिर भय अथवा मरण रूप खेदकूं प्राप्त होवै है, तैसे अनात्म पदार्थ कूं दुःख रूप जान के अद्वेतानन्दकूं विषय करने के वास्ते अन्तर्मुख हुइ जो वृत्ति, सो वृत्ति का विषय चैतन तहां अति सूक्ष्म है याते किंचित काल भी वृत्ति की स्थिति विना, तत्काल ही चैतन स्वरूपानन्द का लाभ होवै नहीं ताते वृत्ति बहिर्मुख होवै है, इस रीति से बहिर्मुख वृत्तिकूं विक्षेप कहे हैं, सो वृत्ति की स्थिरता विना स्वरूपानन्द का अलाभ होवै है, याते अन्त-

मुंख वृत्ति हुए तें भी जितने कालवृत्ति ब्रह्माकार होवै नहीं, उतने काल बाह्य पदार्थ विषे, दोष भावना से योगी बहिर्मुखता होने देवै नहीं, किंतु वृत्ति की अन्तरमुखता करे विक्षेप का विरोधी योगी का जो प्रयत्न, ताकू गौडपादाचार्य ने सम कथा है, जो रागादिक दोष कषाय कहिये है, यद्यपि रागादिन दो प्रकारके है एक बाहर है दूसरे अन्तर है, स्त्री पुत्रादि क जिनके वृत्तमान होवै सो बाहर कहिये है भूत भावी के चिंतन रूप जो मनोमय सो अन्तर कहिये है, ये दो प्रकारके रागादिक समाधि में प्रवृत्त योगी विषे संभवै नहीं, काहेतें ? चित्तकी पांच भूमिका है, तामे एक क्षेप, दूसरी मूढ तीसरी विक्षेप चतुर्थ एकाग्रता, पांचवी निरोध लोकवासना, देहवासना, शास्त्र वासना इत्यादिक रजोगुण परिणाम रूप अनात्मा वासना ताकू क्षेप भूमिका कहे है निद्रा आलस्यादिक तमोगुण परिणाम कू मूढ भूमिका कहे है, ध्यानमें प्रवर्त्त चित्तकी कदाचित बाहर वृत्तिकूं विक्षेप कहे है, अंतःकरण का अतीत परि

णाम और वृतमान परिणाम समानकार होवै ताकं
एकाग्रहता कहे है, ताका लक्षणपातांजलि योग
दर्शन में भाव यह—समाधिकालमें योगीके अन्तःक-
रण विषे एकाग्रहता होवै है, सो एकाग्रहता वृत्तिके
अभाव रूप नहीं किन्तु जितने अन्तःकरणके परि-
णाम समाधिकाल में होवै हैये सारे ही ब्रह्म कूं
विषय करे है यतें अंतकरणके अतीत परिणाम
औघृततमा मरिणाम किन्तु ब्रह्माकार होनेसे समा-
नाकार होवै है सो एकाग्रहताकी वृद्धिकूं निरोध
कहे है ये पांच भूमिका अन्तःकारण की है भूमिका
नाम अवस्था का हैइन पांच भूमिका सहित अंतः-
करण के क्रमतें ये पांच नाम है क्षिप्ति १ मूढ़ २ विक्षिप्त
३ एकाग्र ४ निरोध ५ तिनमें क्षिप्त औ मूढ़ अन्तः-
करण का तो समाधि में अधिकाकार नहीं, विक्षिप्त
अन्तःकरण कूं समाधि में अधिकार है एकाग्रह
निरोध अन्तःकरण समाधिकाल विषे होवै है सो
योग शास्त्रन में कहा है रागादिक् दोष सहित अन्तः-
करण क्षिप्त है ता क्षिप्त ही अन्तःकरण का योग में

अभिकार नहीं याते रागादिक दोष रूप कषाय समाधिके विघ्न यह कहना संभवै नहीं तथापि यह समाधान है बाहर अथवा अन्तरजो रागादिक है सो तो भी अनेक जन्म विषे पूर्व अनुभव किये जो बाहर भीतर रागादिक ताके सूक्ष्म संस्कार चित्त सात्विक अन्त:करण में संभवै है यातें राग द्वेषका नाम कषाय नहीं किन्तु रागादिकन के संस्कार कषाय कहिये है ता संस्कार अन्त:करण में रहे सो जाते दूर होय नहीं यातें समाधिकाल में भी अन्त:करण में रहे हैं, परन्तु रागद्वेषादिकन के उद्भूत संस्कार समाधि के विरोधी हैं, अनुद्भूत विरोधी नहीं, प्रगटकूं उद्भूत अप्रगट कूं अनुद्भूत कहे हैं, समाधि में प्रवृत्तयोगीकूं जो राग द्वेषके संस्कार की प्रगटता होवै तो विषयधन में दोष दर्शक तें दाय देवै। विक्षेप कषाय का यह भेद है, बाहर विष याकार वृत्तिकूं विक्षेप कहे हैं, और योगी के प्रयत्न से जहां वृत्ति अन्तर्मुख होवै तहां रागादिकन के उद्भूत संस्कार में अन्तर्मुख हुइ वृत्ति भी रुक जावै, प्रवाहकूं

विषय करे नहीं, ताकूं कषाय कहे हैं, विषयमें दोष दर्शन सहित योगी के प्रयत्न तें कषाय विघ्न की निवृत्तिहोवै है और रसास्वाद का अर्थ यह–योगी कूं ब्रह्मानन्द का अनुभव होवै है, औ विक्षेप रूप दुःख की निवृति का अनुभव होवै है कहुं दुखः की निवृति से भी अनन्द होवै है, जैसे भारवाह पुरूष का भार उतारने से आनन्द होवै ताके विषे आनन्द का हेतु अन्य विषय तों कोई है नहीं किंतु भार जन्यदुःख की निवृति से यह कहे है, नेरेकूं आनन्द हुआ" याते दुःखकी निवृति आनन्द का हेतु हैं तैसे योगी कूं समाधि में विक्षेप जन्य दुःख की निवृत्ति से जो आनन्द होवै, ताके अनुभव कूं ही रसस्वाद कहे हैं जो दुःख निवृत्ति अनुभव के आनन्द से ही योगी अलंबुद्धि करे तो सकल उपाधि रहित ब्रह्मानन्दाकार वृत्ति के अभाव से ताका अनुभव समाधि होवै नहीं, यातें दुःख की निवृत्ति जन्य आनन्द के अनुभव रूप रसास्वाद भी समाधि में विघ्न है, ये चार विघ्न का सावधान

दुइ त्याग करके परमानन्द अनुभवै सो तत्वमस्यादिक महावाक्यन तें अपरोक्ष अनुभव होता है और कदाचित् महावाक्यन तें जाकूं ज्ञान होवै नहीं सो लय चिंतन रूप अहंग्रह ध्यान करे सो लयचिंतन वर्णन यह—

लय चिंतन ॥ दोहा ॥

मारय मटीते उपजे, माटी रूप जनाय ।
जाको जो कारज वनैं, सो ताहहिमें समाय॥१५४॥

टीका—मांरय कहिये घट सो माटी से उत्पन्न होवै यातें माटी रूप ही जानाता है ऐसे जाको जो कारज वनै है सो ताको ही रूप होवै है और ताके विषे मिल जाता है जैसे पृथ्वी से घटादिक होते हैं सो पृथ्वी रूप होवै है और पृथ्वी के विषे मिल जात हैं तैसे जल, तेज, वायु; आकाश ये सर्व भूतन के जानै और पंचिकृत महापंचभूतन का स्थूल प्राणा यह कार्य सो पंचिकृत भूत रूप होनमें स्थूल प्राणा यह पंचिकृत महापंच भूत विषे मिल जावै है और

पंचिकृत महापंचभूत सो अपंचिकृत महापंच भूतन के कार्य है यातें अपंचिकृत भूत रूपही पंचिकृत भूत है यातें पंचकृत भूत अपंचिकृत भूत विषे लय होवे है ऐसा लयचिन्तन करके सूक्ष्म समष्टि व्यष्टि का भी अपंचिकृत भूतमें यल करे, काहेतें ? अन्तः-करण और ज्ञानइंद्रियां भूतनके सत्त्व गुण के कार्य है औ प्राण तथा कर्मइंद्रियां भूतन के रजोगुण के कार्य हैं और तमोगुण के कार्य पांच विषय है, ताकूं सूक्ष्म सृष्टि कहि है ता सूक्ष्म सृष्टि तीन गुण का कार्य होनेते तीन गुण रूप ही है औ तीन गुण पंच-भूतनके अंश होनेसे पंच भूत रूप ही है, इस रीतिसे सूक्ष्म सृष्टिका अपं चिकृत भूत विषे लय बने है ऐसा लय चिन्तन करके पञ्चभूत का लयचिन्तन यह—पृथ्वी कार्य जलका सोजल रूप है यतें पृथ्वी काजल विषे लयचिन्तन करे तेजका जल कार्य तेज रूप है जलका तेजमें लय करे, कार्य वायुका तेज वायु रूप तेज है यातें वायुमें तेजका लय करे, आकाशका वायकार्य आकाशरूप वायु है वायु

आकाशमें लय करे तमोगुण प्रधान कार्य प्रकृतिका आकाश प्रकृति स्वरूप है औ मायाकी अवस्था विषे ही प्रकृति है, यातें प्रकृति मायास्वरूप ही है सो माया एक वस्तु के अनेक नाम पूर्व कहि आये हैं और माया ब्रह्म की शक्ति है जैसे पुरुष विषे सामर्थ्य, शक्ति सो पुरुष तें भिन्न होवे नहीं तैस ब्रह्म विषे माया शक्ति सो ब्रह्म तें भिन्न है नहीं, किन्तु ब्रह्म रूप माया है इस रीतिसे सर्व अनात्म पदार्थक ब्रह्म विषे लय चिन्तन करके 'सो अद्वैत ब्रह्म मैं हूं' ऐसा चिंतन् करके सो चिन्तनरूप ध्यान करे—ध्यान औ ज्ञानका इतना भेद है ज्ञान तो प्रमाण औ प्रमेयके अधीन है, विधि औ पुरुष की इच्छाके अधीन है नहीं औ ध्यान विधि औ पुरुष की इच्छा तथा विश्वास अरु हठके अधीन है जैसे प्रत्यक्ष ज्ञान में प्रमाण नेत्र औ प्रमेय घटादिक तहां नेत्र का औ घट का सम्बन्ध हुए तें पुरुष की इच्छा बिना ही घट का प्रत्यक्ष ज्ञान होता है—मात्र पद शुभ चतुर्थी के दिक चन्द्र

दर्शन का निषेध है विधि नहीं औ पुरुष कूं यह इच्छा होवै मेरे कूं आज चन्द्र दर्शन होवै नाहीं तो भी किसी प्रकार से नेत्र प्रमाण का चन्द्र प्रमेय से सम्बन्ध हो जावे है चन्द्र का ज्ञान अवश्य होवे है, इस रीति से प्रमाण प्रमेय के अधीन ज्ञान है, विधि औ इच्छा के अधीन ज्ञान नहीं। औ शालिग्राम विष्णु रूप है यह ध्यान करने वाले कूं उत्तम फल प्राप्त होवे है तहां शास्त्र प्रमाण से विष्णु कूं चतुर्भुज, मूर्ति, शंख, चक्र, गदा, पद्म, लक्ष्मी सहित जानै है औ नेत्र प्रमाण से शालिग्राम कूं पत्थर देखै है तथापि विधि विश्वास इच्छा औ हठ से "शालिग्राम विष्णु है" यह ध्यान होवै है, परन्तु सो ध्यान अनेक विधि है कहूँ तो अन्य वस्तु को अन्य रूप तें ध्यान—जैसे शालिग्राम विष्णु रूप तें ध्यान ताकूं प्रतीक ध्यान कहे है औ बैकुंठ वासी विष्णु का शंख चक्रादिक चतुर्भुज मूर्तिरूप ध्यान है तहां अन्य वस्तु का अन्य रूप ध्यान नहीं किन्तु ध्येय के अनुसार यह ध्यान है, बैकुण्ठवासी

विष्णु का स्वरूप प्रत्यक्ष तो है नहीं केवल शास्त्र से जाने है और शास्त्र ने शंख चक्रादि सहित विष्णु का स्वरूप कहा है यातें ध्येय रूप के अनुसार ही यह ध्यान है विधि विस्वास इच्छा औ हठ बिना ध्यान होवै नहीं, यह उपासना करे ऐसे पुरुषकूं प्रेरक वचन विधि है ता वचन में विस्वासकूं श्रद्धा कहे है और अन्तःकरण की कामना रूप रजोगुण की वृत्ति कूं इच्छा कहे है, ध्यान के हेतु यह तीन है, ज्ञान के नहीं, औ हठ से ध्यान होवै है ज्ञान में हठ की अपेक्षा नहीं, काहेतें ? निरन्तर ध्येयाका रचित की वृत्ति कूं ध्यान कहे है तहां वृत्ति में विक्षेप होवै तो हठ से वृत्ति की स्थिति करे औ ज्ञान रूप अन्तःकरण की वृत्ति से तत्काल आवरण भंग हुये में वृत्ति की स्थिति का उपयोग नहीं, यातें हठ की अपेक्षा नहीं, वैकुण्ठवासी विष्णु के ध्यान की नाईं ॥ मैं ब्रह्म हूँ ॥ यह ध्यान भी ध्येय के अनुसार है, प्रतीक नहीं परन्तु जो अहंग्रह ध्यान है, सो ध्येय

स्वरूप का अपने से अभेद करके चिन्तन अहंग्रह ध्यान कहिये है जा पुरुषकूं अपरोक्ष ज्ञान होवै नहीं औ वेद की आज्ञारूप विधि में विश्वास कर के हठ से निरन्तर "ब्रह्म हूँ" या वृत्ति की स्थिति रूप अहंग्रह ध्यान करे ताकूं भी ज्ञान हुइ के मोक्ष होता है सो ध्यान यह—

अहग्रह ध्यान ॥ दोहा ॥

अहं ध्यान ओंकार को, कह्यो श्रुति अनुसार।
नहिं ध्यान समान आन, तु पंचिकरण विचार १६७

टीका—हे शिष्य अहं ध्यान कहिये अहंग्रह ध्यान ओंकार का ब्रह्म रूपतें माण्डूक्य प्रश्न आदिक श्रुति अनुसार सुरेश्वर आचार्य ने कहा है ताके समान अन्य ध्यान है नहीं औ जाकी ध्येय रूप वृत्ति होवै नहीं, सो पंचि करण का बिचार करे, सो ध्यान की विधि यह सगुण औ निरगुण दो प्रकार की उपासना है, यामें निर्गुण की विधि लिखी है, सगुण की नहीं, काहेतें ? जाकूं ब्रह्म-

लोक के भोग की इच्छा होवे, ताकूं निर्गुण उपासना तें भी इच्छा रूप प्रतिबिम्ब से तत्काल ज्ञान द्वारा मोक्ष होवे नहीं, किन्तु ब्रह्मलोक में ही जावे है, सो वार्ता आगे कहेंगे, औ जाकूं ब्रह्मलोक भोग की इच्छा होवे नहीं ताकूं इस लोक में ही तत्काल ज्ञान द्वारा मोक्ष होवे है इस रीति से सगुण उपासना का फल भी निर्गुण उपासना के अन्तर्भूत है, यातें निर्गुण उपासना का प्रकार कहते हैं, जा कछु कार्य कारण वस्तु है, सो ओंकार स्वरूप है, यातें सर्व रूप ओंकार है, सर्व पदार्थ विषे नाम औ रूप दो भाग है, तहां रूप भाग अपने नाम भाग से न्यारा नहीं किन्तु नाम भाग स्वरूप ही रूप भाग है काहेतें ? पदार्थ का रूप कहिये आकार ताका नाम निरूपण करके ग्रहण त्याग होवे है यातें नाम ही सार है और आकार के नाश हुए तें भी नाम शेष रहे है जैसे घट का नाश हुये तें मृति का शेष रहे है तहां घट वस्तु मृतिका से पृथक नहीं, मृतिका स्वरूप है तैसे आकार का

नाश हुये तें मृतिका के समान नाम शेष रहे है जो नाम तातें आकार पृथक नहीं, नाम स्वरूप ही आकार है किंवा जैसे घट सरावादिक परस्पर व्यभिचारी हैं यातें घट सरावादिक मिथ्या है ताके अनुगत मृतिका सत्य है, तैसे घट आकार अनेक है ता सबका 'घट' ये दो अक्षर नाम एक है सो आकार परस्पर व्यभिचारी सर्व घट के आकारन में नाम अनुगत एक है यातें मिथ्या आकार सत्य नाम तें पृथक नहीं, इस रीति से सर्व पदार्थन के आकार अपने नाम तें भिन्न नहीं किन्तु नाम स्वरूप ही आकार है, ये सारे नाम ओंकार से पृथक नहीं किन्तु ओंकार स्वरूप ही नाम है, काहेतें ? वाचक शब्द कूं नाम कहे है औ लोक वेद के शब्द सारे ओंकार से उत्पन्न हुये है यह श्रुति में प्रसिद्ध है, सम्पूर्ण कार्य सो कारण स्वरूप होवे है, यातें ओंकार के कार्य वाचक शब्द रूप नाम सो ओंकार स्वरूप है इस रीति से रूप भाग जो पदार्थन का आकार सो तो नाम स्वरूप है अरु सर्वनाम

ओंकार स्वरूप है यातें सर्व स्वरूप ओंकार है, जैसे सर्व स्वरूप ओंकार तैसे सर्व स्वरूप ब्रह्म है, यातें ओंकार ब्रह्म स्वरूप है औंवा ब्रह्म का वाचक है, ब्रह्म वाच्य है। वाचक औ वाच्य का अभेद होवै है यातें भी ओंकार ब्रह्म स्वरूप होवै है औ विचार दृष्टि से भी जो ओंकार अक्षर सो ब्रह्म विषे अध्यस्त है ब्रह्म ताका अधीष्ठान है अध्यस्त का स्वरूप अधीष्ठान से न्यारा होवै नहीं यातें भी ओंकार ब्रह्म स्वरूप होवै है, इस रीति से ओंकार कूं ब्रह्मरूप करके चिन्तन करे, काहेतें ? आत्मा का ब्रह्म से मुख्य अभेद है और ब्रह्म के चार पाद है तैसे आत्मा के भी चार पाद है, पाद कहिये भान-विराट हिरण्य गर्भ ईश्वर औ तत्पद का लक्ष्य ईश्वर साक्षी ये चार पाद ब्रह्म के है, विश्व तैजस प्राज्ञ त्वं पद का लक्ष्य जीव साक्षी ये चार पाद आत्मा के है, समष्टि स्थूल प्रपंच सहित चैतन कूं विराट कहे है, व्यष्टि स्थूल अभिमान चैतन कूं विश्व कहे है, विराट औ विश्व की उपाधि स्थूल है

याते विराट रूप विश्व है, विराट से न्यारा नहीं, विराट विश्व के सात अङ्ग है, स्वर्ग लोक मूर्ध है सूर्य नेत्र औ वायुप्राण है आकाश धड़ औ समुद्र मूत्र स्थान है पृथ्वी पाद औ पावक मुख है ये सात अङ्ग विराट रूप विश्व के है, माण्डूक्य में यद्यपि स्वर्गादिक लोक विश्व के अङ्ग बनै नहीं औ विराट के अङ्ग है, तथापि सो विराट सें विश्व का अभेद है, यातें विश्व के अङ्ग कहे है, तैसे पूर्व कहि आये जो स्थूल देह में विश्व के भोग कीं चातुर्दश त्रिपुटी तथा पांच प्राण ये उन्नीस मुख विश्व के है, सोई विराट के हैं सो उन्नीस मुख तें स्थूल शब्दादिकन कूं वहिर्मुख बृत्ति करके जाग्रत में विश्व भोगै है, यातें विराट रूप विश्व स्थूल का भोक्ता कह्या और बहिर बृत्ति कही, और जाग्रत अवस्था वाला कहे है, जैसे विराट तें विश्व का अभेद है, तैसे ओंकार की जो प्रथम अकार मात्रा है ताका भी विराट रूप विश्व तें अभेद है काहेतें ? ब्रह्म के चार पाद में प्रथम पाद विराट है, आत्मा के चार

पाद में प्रथम पाद विश्व है तैसे ओंकार की चार मात्रा रूप पादन में प्रथम पाद अकार है याते ये तीनों में प्रथमत्व धर्म समान होने से विराट विश्व अकार तीनों का अभेद चिन्तन करे, जो सात अङ्ग उन्नीस मुख' विश्व के कहे सोई सात अङ्ग उन्नीस मुख तैजस के जाने, परन्तु इतना भेद है विश्व के जो अङ्ग और मुख है, सो तो ईश्वर कृत है और तैजस के जो मूर्ध आदिक अङ्ग तथा इन्द्रिय विषय देवता रूप त्रिपुटी सो मानसिक है, तैजस के भोग सूक्ष्म है यद्यपि भोग नाम सुख वा दुःख के ज्ञान का है ताके विषे स्थूलता सूक्ष्मता कहना बने नहीं, तथापि बाहर जो शब्द आदिक विषय है ताके सम्बन्ध से जो सुख दुःख का साक्षात्कार सो स्थूल कहिये है औ मानस जो शब्दादिक ताके सम्बन्ध से जो भोग होवे ताकूं सूक्ष्म कहिये है, इस रीति से विश्व तो स्थूल का भोक्ता औ तैजस सूक्ष्म का भोक्ता श्रुति कहे है, काहेते ! तैजस के भोग जो शब्दादिक है सो मानस है याते

सूक्ष्म और ताकी अपेक्षा करके विश्व के भोग बाहर शब्दादिक है सो स्थूल है औ विश्व बहिष्य प्राज्ञ है, तैजस अन्तःप्राज्ञ है काहेतें ? विश्व की अन्तःकरण की वृत्ति रूप जो प्राज्ञ है सो बाहर जानै है और तैजसकी नहीं जानै है जैसे विश्वकूं विराटसें अभेद है तैसे तैजसका हिरण्य गर्भसें अभेद जानै, काहेतें ? सूक्ष्म उपाधि तैजसकी औ सूक्ष्म उपाधि हिरण्य गर्भ की है यातें दोनोंकी एकता जानै, तैजस हिरण्य गर्भकी एकता जान के ओंकारकी द्वितीय मात्रा उकारसें ताका अभेद चिंतन करे, काहेतें ? आत्माके पादमें द्वितीय तैजस है और ब्रह्मके पदमें द्वितीय हिरण्यगर्भ है तैसे ओंकार के पदमें उकार द्वितीय है, ये तीनोंमें द्वितीय धर्म समान है, यातें तीनों की एकता चिंतन करे-औ प्राज्ञकूं ईश्वर रूप जानै, काहेतें ? प्राज्ञ ईश्वर की उपाधि कारण है, प्राज्ञ ईश्वर पाद में तृतीय है, तैसे ओंकार की मकार मात्रा तृतीय है, ये तीनों का तृत्य पना धर्म समान है यातें तीनों

की एकता जानै औ सो प्राज्ञ प्रज्ञान घन है, काहेतें ? जाग्रत स्वप्न के जितने ज्ञान है सो सारे सुषुप्ति में लय कहिये एक अविद्या रूप हो जावै है, यातें प्राज्ञ प्रज्ञान घन कहे है, और आनन्द भूक् भी सोइ प्राज्ञ श्रुति कहै है, काहेतें ? अविद्या से आवृत जो आनन्द है ताकू यह प्राज्ञ भोगे है याते आनन्द भूक सो प्राज्ञ कहे है, ऐसा तीनों का जो भेद है, सो उपाधि करके है, विश्व की स्थूल सूक्ष्म कारण ये तीन उपाधि है, तैजस की सूक्ष्म कारण दो उपाधि है, औ प्राज्ञ की एक अज्ञान उपाधि है इस रीति से अधिक न्यून उपाधि के भेद से तीनों का भेद है, परमार्थ स्वरूप तें भेद नहीं, विश्व तैजस प्राज्ञ, ये तीनों विष अनुगत जो चेतन है, सो परमार्थ से तीनों उपाधि सम्बन्ध रहित है, तीनों उपाधि का अधीष्ठान तूर्या है, सो नहीं बहिष्प्रज्ञ और नहीं अन्तःप्राज्ञ औ प्राज्ञान घन भी नहीं, औ मन वाणी का विषय भी नहीं, ऐसे तूर्य कू ब्रह्म का चतुर्थ पाद ईश्वर

साक्षी शुद्ध परमात्मा जाने, इस रीति से दो प्रकार आत्मा का स्वरूप कहा, एक परमार्थ स्वरूप और एक अपरमार्थ स्वरूप, तीन पाद अपरमार्थ स्वरूप और एक पाद तूर्या परमार्थ स्वरूप, जैसे आत्मा के दो स्वरूप तैसे ओंकार के भी दो स्वरूप हैं, अकार, उकार, मकार ये तीन मात्रा रूप जो वर्ण हैं सो तो अपरमार्थ रूप औ तीनों मात्रा विषे व्यापक जो अस्ति भांति प्रिय रूप अधिष्ठान चैतन सो परमार्थ रूप है, ओंकार का जो परमार्थ रूप है ताकूं श्रुति अमात्रा कहे है, काहेतें ? सो परमार्थ स्वरूप विषे मात्रा भाग है नहीं यातें अमात्रा कहे है, इस रीति से दो स्वरूप वाला जो ओंकार ताका दो स्वरूप वाले आत्मा से अभेद जानै— समष्टि औ व्यष्टि स्थूल प्रपञ्च सहित जो विराट औ विश्व ताका अकार से अभेद जानै, काहेतें ? आत्मा के जो पाद हैं तामें विश्व आदि है, तैसे ओंकार की मात्रा में आदि अकार है, यातें दोनों एकजानै,—सूक्ष्म प्रपञ्च सहित जो हिरण्य गर्भ

तैजस, ताकू उकार रूप जानै, काहेतें ? तैजस दूसरा और उकार भी दूसरा, यातें दोनों एक जानै, कारण उपाधि सहित जो ईश्वर रूप प्राज्ञ ताकू मकाररूप जानै काहेतें ? जैसे प्राज्ञ तीसरा तैसे मकार तीसरा और उकार ईश्वर रूप प्राज्ञ औ मकार कू एक जानै, तीनों में अनुगत जो परमार्थ रूप तूर्य है ताकू ओंकार अर्थ की, तीनों मात्रा में अनुगत जो ओंकार का परमार्थ रूप अमात्रा है तिनतें अभिन्न जानै, जैसे विश्वादिकन में तूर्य अनुगत है तैसे अकारादिकन में अमात्रा अनुगत है यातें अमात्रा औ तूर्य एक जानै, इस रीति से आत्मा के पाद ओंकार की मात्रा एकता रूप लय चिन्तन करे, सो लय चिन्तन कहे हैं, विश्व रूप जो अकार है सो उकार रूप तैजस त न्यारा नहीं किन्तु उकार रूप है ऐसा जो चिन्तन करे सो यास्थान में लय कहिये है, ऐसा ही अन्य मात्रा में जानै और आ उकार म अकार का लय किया सो तैजस रूप उकार का प्राज्ञरूप मकार में लय करे, और प्राज्ञ

रूप मकार का तूर्य रूप अमात्रा में लय करे, काहेतें ? स्थूल की उत्पत्ति लय सूक्ष्म विषे होवै है यातें विश्व रूप अकार का तैजस रूप उकार में लय होवै है औ सूक्ष्म की उत्पत्ति लय, कारण में होवै है, यातें तैजस रूप उकार का लय कारण प्राज्ञ रूप मकार में होवै है, या स्थान में विश्वादिकन के ग्रहण तें, समष्टि जो विराटादिक है, ताका और जो अपनी त्रिपुटी है, ताका ग्रहण जानैं, जा प्राज्ञ रूप मकार में उकार का लय किया है, ता मकार कूं तूर्य रूप अमात्रा में लय करे, काहेतें ? ओंकार का परमार्थ स्वरूप जो अमात्रा है, ताका तूर्य से अभेद है, सो तूर्य ब्रह्म रूप है, औ शुद्ध ब्रह्म विषे ईश्वर प्राज्ञ कल्पित है, जो जाके विषे कल्पित होवै, सो ताका स्वरूप होवै है, यातें ईश्वर सहित प्राज्ञ रूप मकार का लय ब्रह्म विषे बनै है, इस रीतिसे ओंकार का परमार्थ स्वरूप अमात्रा में सर्व का लय किया है "सो मैं हूँ" ऐसा एकाग्रह चिन्तन करे, स्थावर, जङ्गम, रूप औ

असङ्ग अद्वैत असंसारी नित्य मुक्त निर्भय ब्रह्म रूप जो ओंकार का परमार्थ स्वरूप अमात्रा "सो मैं हूँ" ऐसा चिन्तन करने से ज्ञान उदय होवे है, यातें ज्ञान द्वारा मुक्तिरूप फलदाता यह ओंकार की निर्गुण उपासना सर्वोपरि है, जाने पूर्व रीति से ओंकार के स्वरूप कू जाना होवै सोइ मुनि कहिये है, अन्य मुनि नहीं, काहेतें? मुनि नाम मनन सीलका है यह ओंकार का चिन्तन सो मनन रूप है यातें जो ओंकार के चिन्तन मनन रहित सो मुनि नहीं कहिये है यह मांडूक्य उपनिषद् की रीति से संक्षेप कहा और भी नृसिंह तापिनी आदिक उपनिषद् में याका प्रकार है, यह ओंकार का चिंतन परमहंसका गोप्य धन है, यामें पतितों न्नका अधिकार नहीं, पूर्वोक्त ओंकारका ब्रह्मरूप ध्यान करने से मोक्ष होवै है परंतु जाकूं इस लोक अथवा ब्रह्म लोक के भोगकी कामना होवे, औ तीव्र विराग होवै नहीं, सो मनुष्य कामनाका हठ से निरोध करके ओंकारका ब्रह्म रूप ध्यान करेगा,

ताकूं भोग कामना ज्ञानकी प्रतिबंधक होनेसे ज्ञान होवै नहीं, किंतु ध्यान करते ही देह त्याग करके अनन्तर अन्य मनुष्य देह धारण करता है तहां श्रेष्ठ भोगनकूं भोगता हुआ अद्वैतानुष्ठान करके-ज्ञान द्वारा मोक्षकूं प्राप्त होवै. सो इस लोक भोग वाला कथा औ जो ब्रह्मलोक भोग कामना का निरोध करके ओंकारका ब्रह्मरूप ध्यान करे, सो ब्रह्मलोक में जावै है. तहां जो भोग है सो देवता न कूं भी दुर्लभ होवै है. सो भोग उपासक भोगै है. काहेतें ? ब्रह्मलोकमें सत्य संकल्प होवै है. यातें ईश्वर सृष्टिकी उत्पत्ति रहित. जो कछु चाहे सो एक संकलपतें होवै और रजोगुण. तमोगुण रहित किंतु सत्वगुण ब्रह्मलोकमें है. यातें बेद गुरु विना अद्वैत ज्ञान होवै है. ता लोक मार्ग क्रम यह जो मनुष्य निर्गुण ब्रह्मकी उपासना में तत्पर होवै ताके मरण समय अंतःकरण इंद्रियां प्राण यद्यपि मूर्छित हो जावे, यातें गमन करे नहीं औ यमदूत समीप आवै भी नहीं तथापि अग्नि

का अभिमानी देवता लिंग देहकूं अपने लोक में से जावै है अग्नि लोक म दिनका अभिमानी देवता अपने लोक से जावै है दिन लोक से शुक्ल पक्ष का अभिमानी देवता अपने लोकमें ले जावै है, शुक्लपक्षतें उत्तरायण अभिमानी देवता अपने लोकमें ले जावै है उत्तरायण मे संवत्सरका अभिमानी देवता अपने लोक में ले जावै है संवत् सरतें वायु का अभिमानी देवता अपने लोक में ले जाता, है वायुलोक तें सूर्य का अभिमानी देवता अपने लोक में ले चले है, सूर्यलोक तें चन्द्रलोक का अभिमानी ले जावै, चन्द्रलोक तें विजली के लोक में हिरण्यगर्भ आज्ञा अनुसारी दिव्य पुरुष उपासकनको लेनेकूं आतेहै, यातें आज्ञा अनुसारी तथा उपासक और विजली देवता वरुण लोक जावै है, वरुण उपासक दिव्य पुरुष इन्द्रलोक जाते है, उपासक इन्द्र दिव्य पुरुष प्रजापति लोक जा ते है, प्रजापति आगे जानेकूं समर्थ नहीं, यातें उपासक दिव्य पुरुष की संघात् ब्रह्मलोक विषे जेय

करता है तहां अधिष्ठान हिरण्यगर्भ है ताके लोक का नाम ब्रह्मलोक है सो ब्रह्मलोकमें सत्यसंकल्प ने उपासक नाना प्रका कै हजारों देह औ ताके भोग एक संकल्प तें उत्पन्न करके भोगै. फेर एक ही शरीर स्थित रखै औ हिरण्यगर्भ के समान दिव्य शरीर औ महाप्रलय पर्यन्त स्थित रहे है औ ब्रह्म-लोक प्रलयकाल में सत्वगुण प्रभाव से अद्वेत ज्ञान हुइ के उपासक मोक्ष कूं प्राप्त होवै है और हिरण्यगर्भ कूं सूक्ष्म सृष्टि का अभिमानी कहिये है और उपासक ब्रह्मलोक प्राप्ति कूं सालोक्य, सामिप्य, सारूप्य और सायुज्य ये चार प्रकार की मूक्ति कहे है, ब्रह्मलोक में निवास होनें से सालोक्य, मुक्ति कहे है औ हिरण्यगर्भकी सामी-प्य बसे है यातें सामिप्यमूक्ति कहे है औ हिरण्य-गर्भकी नाईं दीव्य मूर्ति होनेसे सारूप्य मुक्ति-कहे हैं. और अति उत्तम देवता कूं भी दुर्लभ जा भोग सुख होवै है. ताकूं महाप्रलय पर्यंत भोगै है. यातें सायुज्य मुक्ति कहिये है, ये चार प्रकार का

मुक्ति निर्गुण उपास्नातें सगुण उपासना का फल को भोगकर जो केवल मुक्ति को प्राप्त हुवा सो निर्गुण उपास्नाका फल कहिये है जैसे ओंकारकी ब्रह्मरूप उपासना करनेवाला ब्रह्मलोक प्राप्त करके ज्ञानद्वारा मोक्ष पावे है तैसे अन्य भी उपास्ना उपनिषदनमें कहिये है तिनमें भी सोई फल प्राप्त होता है, परंतु अहंग्रहकी नई अपरध्यनसे ब्रह्मलोक प्राप्त होवै नहीं, यह वार्ता सत्रकार भी भाष्यकारने चतुर्थ अध्यायमें प्रतीपादन करी है जैसे नर्मदेश्वरका शिवरूप में, और शालिग्रामका विष्णु रूपमें ध्यन कथा है सो प्रतिकध्यान है, अहंग्रह नहीं ताते ब्रह्मलोक प्राप्त होवै नहीं सगुण अथवा निर्गुण ब्रह्मकूं आपन में अभेद चिंतन करे, सो अहंग्रह ध्यान कहिये है; सगुण हिरण्यगर्भ औ निर्गुण निरंजन निराकार, तिनमें ब्रह्मलोक प्राप्त होवै है, ओंकारकी ब्रह्मरूपन जो पूर्व उपासनाका करी है, तब ओंकारकी मात्राका अर्थ इस रीतिसें चिंतन किया है; स्थूल उपाधि सहित विराट विश्व चैतन आकारका वाच्य है,

सूक्ष्म उपाधि सहित हिरण्यगर्भ तैजस चैतन उकारका वाच्य है कारण उपाधि सहित ईश्वर प्राज्ञ चैतन मकारका वाच्य है, ऐसा अर्थ जो पूर्व चिंतन किया है ताकी ब्रह्म-लोकमें समृनि होवे है, औ सत्व गुण प्रभावतें ऐसा वर्णन होवै है, स्थूल उपाधिकरके चैतन विषें विराट विश्वपना प्रतीत होवै है, स्थूल समष्टिकी दृष्टि तें विराट पना औ स्थूल व्यष्टिकी दृष्टिसे विश्वपना प्रतित होवै है, औ समष्टि व्यष्टि स्थूल की दृष्टिविना विराट विश्वपना प्रतीत होवै नहीं, किंतु चैतन मात्र ही प्रतीत होवे है, तैसे सूक्ष्म उपाधिसहित हिरण्यगर्भ तैजस चैतन उकार का वाच्य है, समष्टि सूक्ष्म की दृष्टिते चैतन विषे हिरण्यगर्भता औ व्यष्टि सूक्ष्म की दृष्टि तें तें चैतन विषे तैजसता प्रतीत होवै है ताविन-हिरण्ययगर्भ, तैजस भाव प्रतीत होत नहीं तैसें मकार के वाच्य ईश्वर आप चैतन है यहां समष्टि अज्ञान. उपाधि की दृष्टितें चैतन में ईश्वरता औ व्यष्टि अज्ञान उपाधि की दृष्टि से चैतन में

प्रज्ञाता प्रतीत होवै है सो उपाधि की दृष्टी बिना ईश्वर प्राज्ञ भाव प्रतीत होवै नहीं जो वस्तु जाके विषे अन्य की दृष्टिसें प्रतीत होवै सो वस्तु परमार्थ मे ताके विषे होवै नहीं जो जाका रूप अन्य की दृष्टि बिना ही प्रतीत होवै सो ताका रूप परमार्थसे होवै है जैसे एक पुरुष विषे पिता की दृष्टि से पुत्रता औ दादा की दृष्टि से पौत्रता भाव होवै है सो परमार्थ से नहीं, पुरुष का पिंड ही परमार्थ है वैसे स्थूल सूक्ष्म कारण उपाधि की दृष्टि सें जो विराट विश्वादिक भाव होवै है, सो मिथ्या है औ चैतन मात्र ही सत्य है सो चैतन सर्व भेद रहित है, काहेतें ? विराट औ विश्वका जो भेद है सो दोनों की उपाधि तो यद्यपि स्थूल है तथापि समष्टि उपाधि विराट की औ व्यष्टि उपाधि विश्व की तो उपाधि के भेद से भेद है स्वरूप तें नहीं तैसे तैजस का हिरण्यगर्भ से भेद भी समष्टि व्यष्टि उपाधि से है स्वरूप त नहीं, तैसे ईश्वर प्राज्ञ का भेद भी समष्टि व्यष्टि उपाधि के भेद से भेद है, स्वरूप

तें नहीं ऐसे प्राज्ञ का ईश्वर से अभेद औ तैजस का हिरण्यगर्भ तें अभेद तथा विश्व का विराट तें अभेद है, या प्रकार स्थूल उपाधि वाले का सूक्ष्म उपाधि वाले से अथवा कारण उपाधि वाले से सूक्ष्म उपाधि वाले का भी भेद नहीं काहेतें ? स्थूल सूक्ष्म कारण उपाधि की दृष्टि त्याग करके चैतन स्वरूप विषे किसी प्रकार भेद भाव प्रतीत होवै नहीं, और अनात्मा से भी किसी प्रकार चैतन का भेद नहीं, काहेतें ? अनात्मा देहादिकन की अज्ञान काल में प्रतीत होवै है परमार्थ से नहीं यातें अनात्मा का चैतन से भेद भी बनै नहीं, ऐसे सर्व भेद रहित असङ्ग निर्विकार नित्य मुक्त ब्रह्मरूप आत्मा ओंकार का लक्ष्य चैतन स्वयं प्रकाश रूप "सो मैं हूँ" ऐसी भान होवै है, यद्यपि वेद के महा वाक्य के विवेक विना अद्वैत ज्ञान होवै नहीं तथापि ओंकार का विवेक ही महा-वाक्य का विवेक है स्थूल उपाधि सहित चैतन अकार का वाच्य स्थूल उपाधि रहित चैतन अकार

का लक्ष्य है, तैसे सूक्ष्म उपाधि सहित चैतन उकार का वाच्य सूक्ष्म उपाधि रहित चैतन उकार का लक्ष्य है, कारण उपाधि सहित चैतन मकार का वाच्य, अज्ञान उपाधि रहित चैतन मकार का लक्ष्य, इस रीति से उपाधि सहित चैतन विश्वादिक अकारादिकन का वाच्य, और उपाधि रहित लक्ष्य है, तैसे नाम रूप सकल उपाधि सहित चैतन ओंकार वर्ण का वाच्य, औ ता विना चैतन लक्ष्य है, ऐसे ओंकार तथा महावाक्य का अर्थ एक ही है, और तिनतें ज्ञान होवै नहीं तौ पंचिकरण का विचार कर। सो पंचिकरण पूर्व कहि आये है ॥१५५॥

शिष्योवाच ॥ दोहा ॥

गुरू अवस्था ज्ञान की, मुजे कहो निर्धार।
विषय भोगे की त्यागे, सो भी कहो विचार॥१५६॥

श्री गुरोत्तर ॥ दोहा ॥

वाल्य अवस्था ज्ञान की, भोगे भोग अपार।
रचक रग लगे नहीं निश्चय कियो निर्धार॥१५७॥

कबहु एका की अरण्य. अन्न बसन बिन अंग।
कबहु राज समाज तीय, भोगै आप असंग॥१५८॥
विषय भोगै वा त्यागे, सो इंद्रियन का धर्म।
अचल असंग जो आत्मा, वे शुद्ध सदा अकर्म॥१५६
जाकू इच्छा नव उपजे, अनेच्छा भोक अनंत।
सारे भोग प्रारब्ध के, युं जानि रहे निचंत॥१६०॥

टीका—शिष्य का यह प्रश्न है कि, जाकूं ज्ञान होवै, ताकी अवस्था कैसी बखानै है, औ नाना प्रकार के जो भोग है, यामें भोगने के, जो होवै, और त्यागने के होवै सो कहिये ताका उत्तर गुरू जैसे जूले में बालक स्वतन्त्र अपनी मरजी पर खेलता है, तैसे ज्ञानी भी स्वेच्छा चेष्टा करता है, और प्रारब्ध अनुसार किसी देशकाल में अन्न वस्त्र रहित जंगल विषे होवै अथवा किसी समय राणियां सहित राज विलासकता होवै परन्तु कबहु रंचक भी शोक और हर्ष वृत्ति में उपजे नहीं काहेतें ? दो वस्तु अनादि है अनादि, नाम उत्पत्ति रहित

का है, एक दृक् और एक दृश्य परन्तु सो परस्पर विलक्षण है जो दृक् सो ब्रह्म देखनेवाला है और जो दृश्य सो माया विषय है ताकूं ब्रह्म दीसता है सो ब्रह्म वस्तु सत्य अनादि कहिये है और माया शांत अनादि कहिये है ऐसे परस्पर विलक्षण है यामें जो सत्य अनादि सोइ ज्ञानिका स्वरूप है औ शांत अनादि जो माया सो अनिर्वचनीयसत् असत् सें विलक्षण है ये दोनों सत्य असत्य वस्तुका विचार करके अपने स्वरूप कूं निश्चयकिया है याते मिथ्या विषे राग नहीं, इस रीति से ज्ञानी किसी समय विषे सुखी होवै अथवा दुःखी होवै ताका राग द्वेष होवै नहीं, काहेतें ? ज्ञानी को यह निश्चय है कि सुख वा दुःख प्रारब्ध अधीन है औ प्रारब्ध के जो भोग सो इन्द्रियन के विषय हैं ताकूं इन्द्रिया भोगै अथवा त्यागै सो इंद्रियन का धर्म है आत्मा का नहीं काहेत ?। आत्मा अकर्म कहिये कर्म रहित अक्रिय प्रपंचतें असङ्ग अचल सदा शांति रूप है सो आत्माविषे इच्छा उपजे नहीं और अनेच्छा जो राज आदिक

प्राप्त होवै सो अधिक प्रारब्ध भोगावै औ न्यून प्रारब्ध से न्यून भोग की प्राप्ति होवै है जैसे जड़ भरथ न्यून प्रारब्ध यातें वन विचरते ही काल व्यतीत किया और सिखर ध्वज चूडेला के अधिक प्रारब्ध यातें राजभोग कर आयुक्षेप किया सो प्रारब्ध अनुसार है यातें ज्ञानी अन्तर में निर्लेप शान्ती भोगै सदा ॥१५५॥ से ॥१६०॥

शिष्य प्रार्थना ॥ चौपाई ॥

धन्य हो धन्य हो धन्य गुरू देवा,
मैने जान्यो मेरो भेवा ।
कृपा तुमारी सें ममलेवा,
सों फल चरण तुमहिके सेवा ॥१६१॥
भो भगवन तुम कृपानिधाना,
गुरू सर्वज्ञ महेश समाना ।
तुम समसद्गुरू नहीं आना,
फुकत कान ठगारे नाना ॥१६२॥

श्रीगुरू होमुनिवर भूपा,
कियो उपदेस अद्‌भूत अनूपा ।
जातेंनाश्योभयभवकूपा,
लख्योआत्मब्रह्मएक स्वरूपा ॥१६३॥
और गुरू इक विनती मोरी,
जगमें जोगी लाख करोरी ।
यातें कीजे योग कहानी,
ताकूं चाहत में जहानी ॥१६४॥

श्री गुरू योग क्रिया ॥ दोहा ॥

विहगमन आकाशमें, एक पांख नव होय ।
यातें साधन ज्ञानके, वेद योगकहे दोय ॥१६५॥
परतु क्रियाकठिन हे, बिन गुरू लहेनकोइ ।
देखि सीखि जूकहु करे, तू देह रोगि होइ ॥१६६॥
इस हेतु गुरू गम लहे, सिधा रसीलासोइ ।
रोग अग व्यापे नहीं, दु ख मिटजावे दोइ ॥१६७॥

गुरू सहित एकांतमें, साधे योग सुजान।
वृतिबाहर नहीं विचरे, सो लहे आत्म ज्ञान ॥१६८॥
करणी काय बावरे, मूढमति नादान।
झूठखायसोजगतकी, स्वानसुकर समान ॥१६९॥
योगाभ्यासआदिविषे, जोषट्कर्मसोकीन।
जू करे तू रोग हरे, मेदाजात मलीन ॥१७०॥

टीका—जो मनुष्य कूं आत्माज्ञान साक्षात्कार की अभिलाषा होवै, सो मनुष्य वेदांत सहित योग साधै, काहेतें? जैसे विहंग नाम पक्षी आकाश मार्ग एक पांख से गमन करने कूं असमर्थ होते नहीं याते कार्य भी सिद्ध होवै नहीं, तैसे जो पुरुष किन्तु वेदांत जाने और योग जाने नहीं, ताकूं आत्मानन्द साक्षात्कार होवै नहीं, यातें दृढता रहित वाचक ज्ञानवान वक्रवादि शांति कूं प्राप्त होवै नहीं और किंतु योग क्रिया करने वाले कूं आत्मानंद तो प्रगट होवै तथापि वेद के महावाक्यन के विचार विना

एकता होवै नहीं ऐसे दोनों कूं अपरोक्ष ज्ञान होवै नहीं इस रीति से अपरोक्ष ज्ञान केसाधन वेदांत सहित योग और योग सहित वेदांत कहिय है इस वास्ते वेदांत सहित योग करे परतु योग क्रिया कठिन है यातें गुरू बिना कोई भी करे नहीं काहेत ? गुरू बिना तो नहीं परतु कछु दूसरे की क्रिया देखके जो काइ करेगा तौ भी देह रोगी होवैगा इसहेतु सबातें पसंद करके गुरू से प्रवीन हुइ के योग क्रिया साधे ताकूं निधारसीखा अधिकारी कहिय है ऐसे अधिकारी कू गुरू योग विद्या देवै अन्य कूं नहीं काहेतें ? प्राण निरोध करना सिंह के समान है जैसे सिंह युक्ति से पकड़ा आता है तैसे प्राण भी बुद्धियान युक्ति पुरुष त ही वश्य हो सकता है और प्राण विकृति होने म देह में रोग हो आता है यातें मूढन का अधिकार नहीं और पूर्वोक्त कहे अधिकारी कू देवै यातें देह में रोग व्यापे नहीं अरु पूर्व रोग की भी निवृत्ति हो जावै पुनि जन्म और मरण य दानों दुःख मिट जावै

और जो शांण अधिकारी सो गुरू साथ ही एकांत स्थल विषे योग साधै और जाकी वृत्ति अन्तर, विषय त्याग के बाहर जावै नहीं सो आत्मानन्द अनुभवता है और योग क्रिया करने में कायर जो वावरे मतिमन्द कोइ नग्न फिरते हैं अरु शास्त्र की मर्यादा विरुद्ध जक्त के वर्णाश्रम में भ्रष्ट नादान सो कूकर सूवरडी के समान है काहेतें ? जो सात भूमिका ज्ञानकी सुभेच्छादिक है सो तो प्राप्त हुइ नहीं और हठ से तूर्या ग्रहण करके दुःख पाते हैं और मोक्ष की हानि करते है यातें पशुमति कूकर सूकर कहिये है और तिनकूं तूर्या अवस्था कहें तौ तूर्या अवस्था का लिखने वाला किसकूं कहेंगे अर्थात् सातो अवस्था विषे आनन्द ज्ञान भान रहे है और योग के अभ्यास आरंभ में प्रथम नेती आदिक जो षट कर्म है सो करने को कह्या है काहेतें ? जाके शरीर में रुधिर मलिन होने से मेदा भी मलीन होवै सो आसन पर अधिक समय नहीं ठहर सकता है यातें षट कर्म करके शरीर शुद्धि

प्रथम ही करे और जाकूं रोग नहीं सो म करे। ॥१६१॥ से ॥१७०॥

षट कर्म के नाम ॥ दोहा ॥

नेती धौति बस्तिन्यौलि, कपाल भाति त्राटक।
ये षट् कर्म प्रभावतें, रहे न रोग रचक ॥१७१॥

नैती कर्म लक्षण ॥ दोहा ॥

नेती चार प्रकार की, सिंगल जुगल घर्शाण।
चतुर चढ़े जल नासिका, न्यारे गुण वखाण ।१७२।
लवा देढ़ विलास्त का, मोथ गठ्ठु दोर।
चव इन्द्रियन का रोगहरे, जो साधे नित मोर। '७३
सिंगल जुगल श्रो घरशण, तीनों का फल एक।
नाशे गरमी सिर की, जल नैती विवेक ॥१७४॥

टीका—योग के अभ्यास में षट्कर्म प्रथम कर

सो पूर्व कहि आये है ता षट्कर्म के नाम नेती धौती वस्ति न्योलि कपाल भांति औ त्राटक ये षट् कर्म ताकूं उपकर्म भी कहे है औ नेती चार प्रकार की होवै है सिंगल जुगल घरशण और जल नेती ये चार प्रकारकी नेती कहिये हैं ताके फल न्यारे है सिंगल जुगल और घरशण का एक ही फल है और नासिका वाट जल चढ़ना सो जल नेती का गुण न्यारा है, ताके लक्षण मिहिन सूत्र का नासिका पुट समान मोटा और लम्बा डेढ़ विलस्त का दोर गठ लेवै सो आधा गठै नहीं ताकूं सिंगल नेती कहे हैं और सम्पूर्ण गठ लेवै ताकूं घरशण नेती कहे है और दोनों छेडे गंठ लेवै औ मध्य भाग खुला रखै ताकूं जुगल नेती कहे है सो तीनों का गुण नेत्र नासिका, दांत कान ये चार इन्द्रियन का रोग दूर करता है ताकूं नित्य प्रातःकाल साधै और शिर में जब खुश्की होवै तव सूर्य नाड़ी से जलकूं रंध्र में खिंचे सो जल नेती से मगज तर होवै है ॥१७१॥ सें ॥१७४॥

धौती लक्षण ॥ दोहा ॥

धौतीचारप्रकारकी, भ्रत वसन भ्ररु वमन।
व्रह्म दतुन भी ताहिमें, सकल कफ रोग हान ॥१७५॥

टीका—धौती भी चार प्रकार की है एक भ्रत धौती दूसरी वस्त्र, धौती तीसरी वमन धौती और ब्रह्म दतुन भी धौती में कहिये है काहेतें ? जो धौती का गुण सोई ब्रह्म दतुन का गुण है, याते चार प्रकार की धौती कहिये है वस्त्र कू मुख से निगल के गुदा से निकार देवें, ताकू भ्रत धौती कहे है, महीम वस्त्र सोलह हाथ लंबा और चार अगुलि मात्र चौड़ा सो मुख द्वार से निगल जावे औ मुख से ही बाहर खींच लेवै ताकू वस्त्र धौती कहे है, और भोजन करे अथवा जल पीवै फेर ताकू मुख द्वारा वमन कर देवै, ताकू वमन धौती कहे है, और सवा हाथ लंबा अरु अगुलि परिमाण मोटा मूंझ का डोर बनाइके, मुख द्वार से प्रवेश नाभिपर्यंत करे—फेर बाहर काढ लेवै ताकू ब्रह्म

दतुन कहे है, ये चारों कफरोग कूं निवृत्त करते है ॥१७५॥

बस्तिकर्म लक्षण ॥ दोहा ॥

बस्ति कहे दो भांत की, इक सूषक इक जल।
सूषक गगन वास करे, जल देह करे निर्मल ॥१७६॥
अंबु गुदा उठाइ के सो उदर विषे धार।
बांईं दहिने बिलोइके, गुदा बाट उतार ॥१७७॥
बंधे पद्मासन बैठकर, उलटा पवन चलाय।
पवनसे पवन जा मिले, ओघट घाट वसाय ॥१७८॥

टीका—बस्तिकर्म दो भांत के कहिये है, एक सुषक बस्ति और एक जल बस्ति कहिये है, सुषक बस्ति सून मंडल वास कराति है और जल बस्ति नख सिखालौं रोमरोम नाडियन कूं निरोगी करति है. ताके लक्षण—अंबु कहिये जल गुदा से खींच कर पेट में रोकना—अधिक रोकने से–अधिक गुण होता है और बांई दहिने ओर घुमावै–फेर ताकूं

गुदा धार त्याग देवै, और पीठ पर हाथ लपेटे हुए अंगुष्ठ ग्रहण किये हुए पद्मासन पर सिधे बैठ कर अपान वायु उलटा कहिये मूल चक्र मे ऊँचा ले जावै, याते प्राण अपान दोनों एक हुइके— सुन मे वास करेंगे ॥१७६॥॥१७७॥१७८॥

न्यौलि लक्षण ॥ दोहा ॥

नल दोनों उठाइके, घुमावैं जुगल अंग ।
रोग उदर नहीं उपजे, जाने गुरु के संग ॥१७६॥

टीका—खड़े होकर नीचा नम के दोनों हाथ घुटना पर धारे औ स्वास कू ऊंचा खींच के दोनों नल उठावै पुनि वामदक्षिण घाजु सो नल कू भली प्रकार घुमावै यात उदर विषे रोग नहीं होवैगा, घुटन कहिये गोड ॥१७६॥

कपाल भाति लक्षण ॥ दोहा ॥

पद्मासन पर बैठके, कर गोडेपर धार ।
टीनाडो पवनाचले, ज्यु धोंकनि लोहार॥१८०॥

गुरु गमजानि सो करे, दृष्टि अंतर धार।
किंचित कफ व्यापे नहीं, अरु आनंद उजियार ॥

टीका—आधा पद्मासन बांधके-दोनों हाथ गोडे पर स्थापन करके-दोनों घ्राण द्वारा लोहारकी धौकनिके समान पवन कूं चलावै-सोगुरू अभिप्राइसे करे-और दृष्टि कूं अंतर मुख करे-यातें किंचितभी कफरोग नहिं-रहे है और आनंद उदय होता है, सो आनंदका उजियारा भी प्रतीत होवै है ॥१८७॥१८१॥

त्राटकलक्षण ॥ दोहा ॥

टेकीलगाय टकटकी, जैसे चंद चकोर।
पलक नहि मिले पलकसें, साधै शांयं भोर ॥१८२॥
आलण में ओंकार लिखि, दृष्टि तहाँ ठराव।
आठ घटाका एक रस, तबही ध्यान लगाव ॥१८३॥
पट्कर्म के अंगविषे, और भी कर्म अनेक।
जो यथायोग्य सो कह्य, अब अष्ट अंग विवेक १८४

टीका—जैसे चन्द्रचकोर आमथर चन्द्रमाको एक दृष्टिसें देख रहे है, तैसे ही पलक पलकसें मिलना न चाहिये ऐसी टेकी लगावै और सायंकाल प्रात काल अभ्यास करे, सो मकान के भीतर दीवाल में ओंकार अक्षर लिखिके ताके पिपे दृष्टिकूं लगावै, सो आठघडीका एक रस दृष्टि टकी रहे तब ध्यान करनेके योग्य होवे है-पूर्व कहे षट कर्म के अगविषे अन्यकर्म भी बहुत है परंतु जो यथायोग्य हैं इतनेही कहे है, अब अष्टांग वर्णन यह ॥१८२ १८३ १८४ ॥

अष्टाग वर्णन ॥ चौपाई ॥

यमन्यम आसन प्राणायाम,
प्रत्याहार धारणा पराम ।
ध्यानसविकल्पसमधिअष्टाम,
येअष्टानिर्विकल्पसमाधिकाम ॥१८५॥

टीका—निर्विकल्प समाधि के साधम रूप यह आठ अंग कहे हैं यम १ न्यम [illegible] ३ प्राणा

याम ४ प्रत्याहार ५ धारणा ६ ध्यान ७ औ सविकल्प समाधि ८ ये सारे निर्विकल्प समाधि के वास्ते कहिये है—अहिंसा सत्य असत्येय ब्रह्मचर्य अपरिग्रह ये पांच यम कहे है—अहिंसा कहिये कायिक वाचिक मानसिक ये तीन प्रकार से हिंसा करे नही—सत्य कहिये झूठा कर्म करे नहीं झूठा बोलें नहीं औ झूठा शंकल्प भी करे नहीं असत्येय कहिये शरीरसे आज्ञा विना किसी की पुष्पकी भी चोरी करे नहीं और वाणी से किसीकूं चोरी करने की आज्ञा करे नहीं, और मन में शंकल्प भी करे नहीं,—आठ प्रकार ब्रह्मचर्य, स्मरणगार १ मैथुन २ विनोद ३ रसखाद ७ नृतगत ४ गानसुन ६ गांनोचार. हांसिविलास ये आठ प्रकार के ब्रह्मचर्य कहिये है, स्त्री का स्पर्श करे नहीं, स्त्री मैथुन करे नहीं, स्त्री के साथ खेले नही, स्त्री की रसोई का स्वाद ग्रहण करे नहीं—स्त्री का नाटाराम देखे नहीं, औ स्त्री का अलंकारपेन के आप नृत त करे भी नहीं. स्त्रीका गांणा सुणे नहीं स्त्री का गांणा बोले

टीका—जैसे चन्द्रचकोर जानवर चन्द्रमाको एक दृष्टिसें देख रहे है, तैसे ही पलक पलकसें मिलना न चाहिये ऐसी टेकी लगावे और सायंकाल प्रात' काल अभ्यास करे, सो मकान के भीतर दीवाल में ओंकार अक्षर लिखिके ताके विषे दृष्टिकूं लगावे, सो आठघटीका एक रस दृष्टि टकी रहे तब ध्यान करनेके योग्य होवे है—पूर्व कहे षट कर्म के अंगविषे अन्यकर्म भी बहुत है परंतु जो यथायोग्य हैं इतनेही कहे है, अब अष्टांग वर्णन यह ॥१८२ १८३ १८४ ॥

अष्टाग वर्णन ॥ चौपाई ॥

यमन्यम आसन प्राणायाम,
प्रत्याहार धारणा पदाम ।
ध्यानसविकल्पसमधिअष्टाम,
येअष्टानिर्विकल्पसमाधिकाम ॥१८५॥

टीका—निर्विकल्प समाधि के साधन रूप यह आठ अंग कहे है यम १ न्यम २ आसन ३ प्राणा

टीका—शास्त्रविषे चौरासी आसन कहिये है तामें चार आसन मुख्य कहिये है सिद्धासन पद्मासन सिंहासन और मत्स्येंद्रासन यामें भी श्रेष्ठ सिद्धासन कहे है ताका प्रकार यह सिद्धासन के चार भेद है सिद्धासन वज्रासन गुप्तासन और मूक्तासन ये चार भेद है परन्तु फल में भेद नहीं यातें तीन आसन के लक्षण त्याग कर के एक सिद्धासन का यह लक्षण वाम पाद की एड़ी गूदा औ मेढ्र के मध्य भाग में स्थापन करे और दक्षिण पाद की एड़ी मेढ्र के माथे राखै मेढ्र नाम शिश्न ॥१८६-१८७-१८८॥

नाड़ीभेद सयनासन ॥ दोहा ॥

नारि कूं नीचे धरे, नरकूं माथे धार ।
यह आसन सोवै सदा, वैद न देखै द्वार ॥१८९॥
वाम नाड़ी इडा नारि, दक्षिण पिंगला नर ।
ये योग्यन की सान है, नाड़ियां दोनों स्वर ॥१९०॥

टीका—योगी शयनकाल में नारि कहिये इडा नाड़ी कूं नीचे राखै, औ नर कहिये पिंगल,

नहीं और स्त्री से हंसे नहीं अरु न हंसावे,-अप रिग्रह कहिये, पराया माल अपने शुभ करे नहीं, और शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय, और ईश्वर प्रणी-धान ये पांच न्यम कहिये है,-शौच कहिये, स्नान करना और वस्त्र स्वच्छ सो बाहर शुद्धि तथा अहिंसादिक से अन्तर की शुद्धि करें संतोष कहिये प्रारब्ध अनुसार प्राप्तिविषे, शान्ती भोगना तप कहिये देशकाल अनुसार दुःख की सहंता स्वाध्याय कहिये विद्या पढ़े और पढ़ावे ईश्वर प्रणीधान कहिये सगुण ब्रह्म की आस्ता ॥१८५॥

आसन वर्णन ॥ दोहा ॥

चौरासी आसन विषे, मुख्य आसन यह चार।
सिद्ध पद्म सिंह मत्सेंद्र, तहां सिद्धासन मंकार ॥१८६॥
सिंद्धासनके चार भेद, गुण तिका है एक।
तीन भेद त्याग करी, सुण सिद्धासन विवेक ॥१८७॥
एड़ी बावे पावकी, सींवन मध्ये राख।
एड़ी दहिने पावकी, मेढ़ मांथे नाख ॥१८८॥

पुर्णिमा का पूराऽहार, शौला ग्रास पावे सो
प्रतीपदा पंद्रा ग्रास, आगे कमती करी के ॥
कृष्ण पक्ष रींति कही, शुक्ल पक्ष बिधि यह ।
एक ग्रास अमावास आगे वृधि भरी के ॥
छ महीना साधे यातें, मनस्थिर हो जावे है ।
सहज पुरुष साधै, योग चित ठरी के ॥१६३॥

टीका—जो मनुष्य मन वश करने कूं चाहे सो निमित्त भोजन करे तातें निद्रा भी निमित्त हो जावेगी और क्रोध उठनें देवै नहीं सो विचार द्वारा करे और किसी से प्रीति तथा विरोध करे नहीं काहेतें? यह नियम है की जहां जितनी प्रीति होवै तहां काल पर इतना विरोध भी होवै है यातें प्रीति विरोध का त्याग करे सो इतिहासें वसिष्ठ जी का विश्वामित्र से और जमदग्नि का सहस्त्रार्जुन से प्रीत विरोध प्रसिद्ध है यातें मनुष्य सावधान रहे ना तब यह मन जित शक्ता है अर्थात चित्तकी चंचलता रहे नहीं यतें स्थिर हुइके एकातमें प्रीति सहित्त कूंभकप्राणायाम करे ऐसे विचारसें ही

नाड़ी कूं ऊपर धरे, जाकूं नित्य सोवने की ऐसी टेक होवै ताका देह निरोग रहे है, यातें हकीम घर देखे नहीं, औ वाम नाड़ी इड़ा सो नारि है, औ दक्षिण नाड़ी पिंगला कूं नर कहिये है, सो योगी जन कि समझा है, और प्राण पूट विषे जो वायु है, ताकू नाड़ियां कहे है यह आसन सिद्ध कर के आहार निमित्त दहाने ॥१८६॥१६०॥

नैमित निद्राहार ॥ दोहा ॥

निद्रा वस्य हव आहार ते, कबहू न कीजें क्रोध ।
सो विचार से होत है, जांहि प्रीत विरोध ॥१६१॥
तब जीत्यो मन जात यह, चंचल रहे न चित ।
स्थिर हुइ एकांत भास, करे कुंभक सप्रीत ॥१६२॥

कवित्त

जाको मन जीत्यो जबे, सो कछु नव करीह ।
कायर करे चांद्रायण, एक टेक धारी के ॥

संक्षेप कूंभक प्राणायाम ॥ दोहा ॥

प्राणायाम अनेक विधि, कींचित कहूँ प्रकार।
अनुलोमविलोम भस्त्रिका, दोनयोगततसार॥१६४

टीका—प्राणायाम अनेक प्रकारके है, तामें कींचित किहिये थोड़ेसे अनुलोम विलोम और भस्त्रिका योगके सरभूत है, तामें अनुलो विलोमका प्रकार यह, ॥१६४॥

अनुलोम विलोम कूंभक ॥ दोहा ॥

पूरक चन्द्र नाडीयें, भीतर कूंभक धार।
रेचक सूरज नाशिका, शनै शनै उतार ॥१६५॥
शौलः मात्रा पूरकमें, चौसठ कूंभक ठार।
रेचक वतीसतें करे, जब पावनां उतार ॥१६६॥
ताके विषे तीन बंधू, मूल औ जलंधर।
अपर उडियान तीसरा, सावधान हुइ कर ॥१६७॥
मूल बंध पूरक समय, निरोधे जालंधर।
रेचकमें उड्डियान अरू, दृष्टि भ्रकूटीपर ॥१६८॥

गका मन जित्या जावै सो मनुष्य अपरकष्ट क्रिया करे नहीं ऐसे विचारवानकूं सूरवीर कहिये है और कायर कहिये जो मंदबुद्धि पुरुष होवै जाकूं विचार नहीं सो पुरुष क।मास चांद्रायण व्रतकरे सो चाँद्रायणकी विधि यह–पुर्णिमा तिथि के दिन चौदा' ग्रास भोजन करोगे ताकूं पुरा आहार कहिये है और प्रतीपदाके रोज पद्र'ग्रास भोजन करे ऐसें एक एक ग्रास प्रती दिन कमति करके अमावसकें रोज एक ही ग्रास भोजन होवैगा, सो कृष्ण पक्षकी विधि कहि आये अब शुक्ल पक्षकी रीति यह–शुद्धि प्रतीपदाके रोज दो ग्रास भोजन करे और द्वितीया के दिन तीन ग्रास ऐसें प्रतीदिन एक एक ग्रास वृद्धि करे यासें पुन' पुर्णिमाके दिन चौदा' ग्रास भोजन होवेगा इस रीतिसें व्रत ६ मास करनेसें अहार मैमित।हो जावेगा ताके साथ निद्रा भी मैमित हो जावैगी इस करके साधक अमावास ही स्थिरचित करके कुंभक प्राणयाम करेगा सो कुं भकप्राणायाम यह ॥१६१॥१६२॥१६३॥

सो जालंधर बंध है; अरु रेचक समय पेट कूं पीठकी तरफ खींचै, सो उडियान बंध है. और दृष्टि कूं भृकुटी पर टिकावै, फेर सूर्य नड़ी तें पूरक औ कुंभक भी साथ में करे औ रेचक तथा तीनों बंध भी संधाथ करे, अस अनुलोम विलोम कुंभक प्राणायाम कूं जो बुद्धिमान साधेगा, ताकूं आत्मा-का आनन्द प्रगट होवैगा, अर्थात् सुषुमना खुल जाति है, और देह की सम्पूर्ण नाड़ियां शुद्ध कहिये निरोगी होवै है ॥१६५॥ सें ॥२००॥

भस्त्रिका कुंभक ॥ दोहा ॥

प्राण इहांतें खींचके, पिंगल तें खुल जाय।
पिंगल खेंचि इडा त्यागे, सीघ्रसीघ्र उलटाय ॥२०१॥
हारे तब पूरक इडा, भीतर पवनाधार।
रेचक पिंगल नासिका, धीरज तें नीकार ॥२०२॥
पूनि पिंगलातें शरू, ज्युं धौंकनि लोहार।
पूरक सूरज सें कुंभक, रेचक इडा द्वार ॥२०३॥

फेर पूरक सूरजतें, कुम्भक होवे साथ।
रेचक चन्द्रतें करे, सकल बंध संघाथ ॥१९९॥
श्वास अनुलोम विलोम हीं जो साधे जनशुद्ध।
आत्म आनंद प्रगटे, सगरी नाडी शुद्ध ॥२००॥

टीका—अनुलोम विलोम कुंभक प्राणायाम नाम माही, चंद्रमातें वायु कूं पूर देवै, सोपूरक और कुंभक कहिये भीतरमें सो वायु कूं रोक और रेचक नाम शनै शनै दक्षिण सूर्य नासिकासें वायु कूं बाहर निकारे; सो वायु कूं षोडश, मात्रा कहिये गिनती से पूर देवै, और चौसठ गिनती कुंभक नाम भीतरमें वायु कूं रोके, और रेचक जब पवन बाहर निकारे, तब गिनती बत्तीस करे, और ताके बिच तीन बंध रखने का कहिये है, मूलबंध आलंधर बंध, तीसरा उड्डियान बंध, ताकूं सावधान हुइक करे, पूरक समय गुदाका संकुचन करे, सा मूलबंध है, और कुंभक समय ठोडी कूं छातीमें धरे अरु जिम्हा कूं दांतमें लगावे

भानरहे नहिं देहकी, असन के आकाश।
सोति नागनि जाग परे,मोद जोति प्रकाश॥२०७॥
प्रत्याहार मनरोकनो, धारणा सो वृति स्थित।
ध्यान में आनंद प्रगटे, होय समाधि प्रतीत॥२०८॥

टीका—भस्त्रिका अन्यरीतिसें, भेद है औ फल भेद नहीं काहेत ? प्रथम रीतिमें दोनों घ्राण पूट विषे धौकनि के समान प्राण, उलट सुलट चलानेका कह्या, और यह दूसरी भांतिसे कहते हैं, घ्राण के एक नाडी छिद्रमें धौकनिके समान प्राणकूं चलना, यह भेद है परंतु फल एक ही है—प्राणइडानाड़ी ते खीचकर, इडानाडीतें ही शीघ्र ही निकार देवै, सो क्रिया भी लोहार की धौकनिके समान शीघ्र शीघ्र करे, औ सोइ नाड़ीतें पूरक औ कुंभक अनन्तर पिंगलानाड़ी ते रेचक, करे फेर पिंगलाते धौकनि करके कुंभक औ रेचक इडातें करे, और रोग निवृत्तिके वास्ते, सावधान हुइके तीनों बंधकरे औ दृष्टि अंतर विषे राखें, ताका फल, यह—भस्त्रीका अभ्यासके

टीका—यह भस्त्रिका प्रणायाम के अभ्यासमें, प्राणकूं इडानाडी तें भीच के, शीघ्र ही सूर्य नाडी तें त्योस देवै, तुरंत सूर्य नाडीतें सेंचके, शीघ्र ही इडानाडी सें त्याग देवै, ऐसे उलट पलट शीघ्र शीघ्र करे, और जब थक आवै, तब इडानाडी सें पूरक करे और कुंभक करके रेचक सूर्य नाडी से करे, अर्थात् शनै शनै प्राणकूं उतारे, पुनि सूर्य नाडीसें लोहारकी धौकनी के समान प्राणकूं खीचना छोड़ना शुरू करे औ कुंभक तथा इडानाडीसें धीरमें रेचक करे ॥२०१॥२०२॥२०३॥

अन्य रीति भस्त्रिका ॥ दोहा ॥

प्राण इडातें खीचके, इडातेहि नीकार ।
सो भी सीघ्रसीघ्र करे, धौकनिफूक लोहार ॥२०४॥
पुरक इडा और कूंभक, रेचक सूरज द्वार ।
फेर धौकनि सूरजतें, इडा प्राण उतार ॥२०५॥
वध कूंभक सहित करे, भने जो रोग निवार ।
सावधान मन हीं करे, अतर दृष्टि धार ॥२०६॥

दानुविद्ध औ शब्दानुविद्ध "अहं ब्रह्मास्मि" शब्द नामसहित अनुविद्ध है औ शब्द रहित अनुविद्ध है–त्रिपुटी भान रहित अखंड आनंदाकार वृत्ति की स्थिति निर्विकल्प समाधि कहे है, इस रीतिसें सविकल्प, निर्विकल्प भेद है, यामे सविकल्प साधन औ निर्विकल्प समाधि फल है, सविकल्पमें यद्यपि त्रिपुटी द्वैत है, तथापि सविकल्प समाधि सो आत्मानंद रूप है सो आत्मानंद रूप निर्विकल्प समाधि भी है, याते सविकल्प समाधि सो निर्विकल्प समाधि के अंतरगत है, पृथक नहीं, सो आनन्द खेचरी मुद्रा सें भी प्राप्त होता है, सो खेचरी वर्णन, ॥ २०४-से-२०८ ॥

खेचरी मुद्रा ॥ दोहा ॥

सात्ये साधै खेचरी, जो गुरु भक्तिवान ।
जन्म मरण ताकूं नहीं, सोहे ब्रह्म समान ॥२०९॥

टीका—यह खेचरी मुद्रा का ऐसा प्रभाव है कि जो मनुष्य सात्ये कहिये हर्ष सहित उमंग से

कूंभक विषे साधक देह भान रहित होजावे है काहेते? मार्गमें कहिये सुषुमना जागृत होवै है, तासुषुमानाके मुखसे-आत्मा नंद जोतिसंपूर्ण देह में व्यापता है, सो आनंद विषे वृत्ति लीन होवै है, याते देहकी भान रहे नहीं, फेर सावधान होवै तब ऐसा कहे है कि मैं आशनतें अधर आकाशमें होगया था, और प्रत्याहार यह, जो शब्दादिक पांचों विषय हैं ताके माहीसें पांचों ज्ञानेंद्रियोंका निरोध औ धारणा। अंतराइ रहित वृत्ति की स्थिति, और ध्यान–अंतराय रहित पूर्व कहे आनंद विषे वृतिका वेग व्युत्थान पूर्व संस्कारका तिरसकार और वृत्ति कूं आनन्द विषे स्थिति रूप संस्कारकी प्रगटता हुये, वृत्तिका एकाग्रह रूप परिणाम समाधि कहिये है ता समाधि दो प्रकारकी है एक सविकल्प दूसरी निर्विकल्प ज्ञाता ज्ञान ज्ञेयरूप त्रिपुठी अर्थात् मैं समाधि करता हूं, मानंदकू जानता हूं और यह आनंद रूप हूं ऐसी भानसहित आनंद विषे वृत्तिकी स्थितिकूं सविकल्प समाधि कहे है, सो दो प्राकारकी है,

साधन सिद्ध छः मास करी, जीव्हा तालु धार।
जोगी अमृत भोगवे, नहि आवै भग नार ॥२१२॥
गोमांस को भक्षण करे, अमृत वारी पान।
दृढासन एकांत में, अवनिष लागै ध्यान ॥२१३॥

टीका—खेचरी नाम सुन मण्डल जीव्हा प्रवेश का है, सो जीव्हा का आठ दिन पर एक रोम मात्र छेदन करे ताके ऊपर हरड औ कथ्थे का चूरण लगावे सो जीव्हा कूं गाय दोहन के समान दोहन करे फेर जीव्हा कूं उलटाइ के व्योम चक्र में प्रवेश करके अमृत के स्वाद कूं अनुभवै आलस्य का त्याग करे तहां काक है, ताका नीचे खीचन करे, ऐसे अभ्यास छः मास पर साधन रूप जीव्हा अन्तर भ्रकुटी योग्य होवै तब गोमांस भक्षण कहिये जीव्हा कूं ब्रह्मरंध्र में प्रवेश कर के अमृत पान करे सो एकांत में दृढ आसन पर बैठ के जो अखण्ड काल ध्यान में लगा रहे सो गर्भवास भंग नाली विषे आवै नहीं सो अमृत पान विधि यह ॥२१० तें ॥२१३॥

गुरू विषे भक्ति कहिये प्रीति वाला यह खेचरी मुद्रा भली प्रकार साधेगा ताकूं जन्म औ मरण तो होवै नहीं परन्तु यह देह विषे जो मूढ़ता होवै सो निवृत्त हुइके अनन्त कोटी ब्रह्मांड का पति होवेगा काहे तें? आसन में सिद्धासन श्रेष्ठ है तैसे योगमुद्रा में खेचरी मुद्रा श्रेष्ठा है और कुम्भक में केवल कुम्भक श्रेष्ट है जाके विषे पूरक रेचक नहीं अरु स्वास बाहर होवै तो बाहर ही रोक देवै अरु भीतर होवै तो भीतर ही स्वांसकूं रोक देवै ताकू केवल कुम्भक कहे है सो, केवल कुम्भक खेचरी विषे भी अमृत पान में योग्य है, यातें खेचरी के प्रभाव से ब्रह्म के समान शोभता है सो खेचरी के साधन की रीति यह ॥२०६॥

खेचरी साधन विध ॥ दोहा ॥

आठ दिन पर एक रोम, जीव्हा छेदी जाय।
हरड़ कथे कू पीस के, तापर देहु लगाय ॥२१०॥
गउसम दोहन जीव्हा, महरी के परमाद।
जीव्हाकू उलटि धरे, भोगें अमृत स्वाद ॥२११॥

रणी है ताकूं इस रीति से करे, सोम कहिये चन्द्र मुस्तक में हैं, और सूर्य नाभि में हैं, और चन्द्र से अमृत नाभि में आवता है सो सूर्य की अग्नि से दहन हो जाता है, यातें ग्रीवा कूं मुरड के शिर पृथ्वी पर धरे और पैर कूं आकाश में करे और जीव्हा तें सूर्य द्वारा बंध करके अमृत पान करे. और लाज, बड़ाई, मान ईर्षा का त्याग करके जो मनुष्य एकान्त में निरन्तर अमृत पान करे तो लाल रंग का रुधिर दूध रंग हो जावै सो बीस वर्ष पर दूध होवै और छतीतस वर्ष पर ईश्वर तुल्य होवै है सो उत्तर शरीर से ही सर्वज्ञ औ निर्वाण होता है ॥२१४॥ से ॥२१७॥

छांयांपुरुष ॥ दोहा ॥

सगग योग सिद्ध करी, पुरुष छाया साध।
शक्ति आवै जब देह में, तब खडे आराध ॥२१८॥
जोंत पीठ लगाइ के, कर नाड़ी दृष्टि राख।
छांयां सिद्ध छ मास पर प्रश्नोत्तर दे भाख ॥२१९॥

अमृतपान विधि ॥ दोहा ॥

सोम धर पाताल में सूर चढ़े आकाश ।
विम्रित करणी सो कही, करे यह गुरु दाश ॥२१४॥
गडदन धरणी धार के, उँचे पहेर पसार ।
रसना सूरज मण्डले, भोगे अमृत वार ॥२१५॥
जो सन्तत लागा रहे, तजे लाज अभिमान ।
अमृत पीने एक रस, ता खुन चीर समान ॥२१६॥
वीस वर्ष पर दूध होय, छतीस ईश वखाण ।
इसी देह से भोगवे, आपही पद निर्वाण ॥२१७॥

टीका—यह क्रिया का नाम विम्रित करणी कहे है ताकूं जो गुरु की आज्ञा अनुसारी दास होवै सो करे, काहेतें ? यह खेचरी मुद्रा का अद्भुत उपमा रहित फल है, यातें जो मनुष्य निष्प्रपंच निष्कामि निसनेही, निष्मोही और निर्मानि होवै सो करे यातें खेचरी का अम सुफल होवैगा सो खेचरी के अन्तर्गत विम्रित

करणी है ताकूं इस रीति से करे, सोम कहिये चन्द्र मुस्तक में हैं, और सूर्य नाभि में हैं, और चन्द्र से अमृत नाभि में आवता है सो सूर्य की अग्नि से दहन हो जाता है, यातें ग्रीवा कूं मुरड के शिर पृथ्वी पर धरे और पैर कूं आकाश में करे और जीव्हा तें सूर्य द्वारा बंध करके अमृत पान करे. और लाज, बड़ाई, मान ईर्षा का त्याग करके जो मनुष्य एकान्त में निरन्तर अमृत पान करे तो लाल रंग का रुधिर दूध रंग हो जावै सो बीस वर्ष पर दृध होवै और छतीतस वर्ष पर ईश्वर तुल्य होवै है सो उत्तर शरीर से ही सर्वज्ञ औ निर्वाण होता है ॥२१४॥ से ॥२१७॥

छांयांपुरुष ॥ दोहा ॥

सगग योग सिद्ध करी, पुरुष छाया साध।
शक्ति आवै जब देह में, तब खडे आराध ॥२१८॥
जोति पीठ लगाइ के, कर नाड़ी दृष्टि राख।
छांयां सिद्ध छ मास पर प्रश्नोत्तर दे भाख ॥२१९॥

पांच घटी का हाथ पर, अखण्ड नीगा देख।
फेर पाच आकाश में, सन्मुख दृष्टि लेख ॥२२०॥

विसर्जन ॥ दोहा ॥

अपर साधन अनेक जो, कलि में नहीं काम।
आयु बुद्धि छिन यातें, जपे निरन्तर नाम ॥२२१॥
सतयुग में योग साधन, युग त्रेता में हवन
द्वापर में उपासना, कलि में नाम रटन ॥२२२॥
नहींरच्यो हैग्रयपद, नाम सदाइ निज काज।
यामें हेतु सोइ लख्यो, दयाधर्म शिरताज ॥२२३॥
ज्ञानी कहे पंडित कू है प्रश्न मेरो एक।
अमैत छद आकाश के, करिहु ताहि विवेक ॥२२४॥
योगि भक्त के आख्याण, कहो विचारि वात।
तनहीं तुम कहाहु ते, परने तुज पितु मात ॥२२५॥

कहे सोइ अद्वैत् लहे जो हिय करे विचार।
कीजै नामस्कार तिहिं, सोहै रूप हमार ॥२२६॥
अस्तिभांति प्रियरूपतें, सबघट रह्योसमाइ।
पढ़ै सुनै यह ग्रंथ तिहिं सच्चिदानंद सहाइ ॥२२७॥
नामरूप जंजालमें, अस्तिभांति प्रिय रूप।
युंमेनें पहिचानियो, सच्चिदानंद स्वरूप ॥२२८॥

॥ इति श्री तत्त्वविचार दीपक समाप्तः ॥

ग्रंथ छपवानेके विषे सर्व मदद्कारों के रु० तथा नाम

५०) पूर्वग्रंथ बचत के,
जय। मुंबइके,
२५) मेसर्स जेठादेवजी (मांडवी)
२५) छ० पुरुषोत्तमदास मथुरदास कं० (मांडवी)
२०) शेठ माधवजी घेला भाइ-कॉमीन्टन रोड
१५) रा० रामदास ब्रोमाभाइ मुलसीधर
१५) गिरजाशंकर-दयाशंकर वैद (गीरगाम)
१५) शेठ माधवजी जेसंग-माधुसूदन (कांदावाडी)
१०) प्रहलादजी—दलसुराम भट
१०) शेठ गोरधनदास—त्रिभोवनदास
१०) शेठ मेकजी—सुंदरजी—कं० (मांडवी)
१०) गुमस्तेकी—लक्ष्मीनारायण (कालिकादेवी)
१०) शेठ गोरधनदास वल्लभदास—कमिशनर एजं
मडीयाद

१०) शेठ धारसी नानजी
१०) शेठ पुरुषोत्तम-हीरजी, गोविन्दजी
१०) शेठ रतनशी-पुंजा
१०) शेठ कालीदास-नारणजी
५) दलाल चिमनलाल-साकरलाल (लेंमीन्टनरोड)
५) शेठ कानजी-राघुवा (माटूंगा)
५) डाह्या भाइ-परमाणन्द दास कीलावाला सवरजीपूर
५) वीठलदास भवानीदास-बोनी बिलडींग (न्यूचरनीरोड)
५) मोतीधर्म कांटा
५) शेठ लवजी-मेघजी-गीरगांम-बेंकरोड
५) शा०वलभजी-हेमजी-खेतवाडी-मेनरोड
५) शेठ मोती भाइ-पंचाण
२) शेठ नांनालाल, मोतीचंद-लोहारचाल-
२) महादेव-भीकाजी-खोपर-चिंचघर (नाशक)
२) साखराम-बीरदीचंद (नाशक)
२) चनीलाल-हरखचंद (नाशक)

१) धनराज–जेचरमल (नाशक)
२॥) गुप्त (मुंबई) (नाशक)
८६॥) (अथ घोलकादि गामोंके)
१०) ठ० गोपालदास–पुंजाभाइ
३) ठ० डाह्या भाइ–हरखजी
२) ह० गीरधरलाल–जीवाभाइ
२) परी–हरीलाल–साधाभाइ
२) शा० मगनलाल–दामोदर
२) शा० पोपटलाल–गांगजी
२) शा० पितामर–नरमोघन
२) ह० आत्माराम–मगनलाल
२) गांधी, गोरधनदास, मथुरभाइ
२) शा० नाथालाल–जेठालाल
२) गांधी जगजीवन–जेचंद
२) पं० गिरधरलाल–अवरभाई
२) ठ० हीरालाल–अमरसी
२) गाधी पुरषोत्तम–जेचंद
२) शा० वाडीलाल–ना।

१) खत्री चतुर्भुज–बावल
१) खत्री आणदजी–देवचंद
१) घाची गोविन्दलाल–मोतीलाल
१) ठ० शंकरलाल–जीवण
१) काछिया–भुला–गबड
१) ठ० पिताम्बर—त्रिकमदास
१) शा० पुरषोत्तम–नाथालाला
१) शा० माणेकलाल–बलदेव
१) घांची नाथालाल–जवेरदास
१) घांची नरोत्तम–दयालजी
१) काछिया भीखाभाई–छगनलाल
१) शा० नाथालाल–भूखणदास
१) शा० मोहनलाल–करशनदास
१) गोला० गटोर–कूबेर

५३) (अब पृथक पृथक गांम के)
१०) देशाई–हरगोवनदास नारायणदास (बावला)
१०) शेठ रमणलाल केशवलाल (पेटलाद)
सेनभगत शर्मा लल्लू (गोधरा)

१) भावसार ईश्वरदास हरजीवनदास (गोधरा)
२) मेता दलसुख मकाभाई (धावला)
२) भाईलाल विश्वनाथ सयरजिष्ट्ररदार (आश्रय
१) राय बहादुर नागरजीभाई (अकालपुर)
२) बाबू रामवरणसिंह (मउधारी) जि० गया
२) बाबू अमनासिंह (महुआड) जि० गया
१) बाबू बुन्कायनसिंह (महुआड) जि० गया
१) बाबू केदीसिंह (महुआड) जि० गया
१) बाबू देवकीसिंह (मउधारी) जि० गया
१) बाबू रामधादसिंह (मउधारी) जि० गया
१) भजनमहतो (धीघा) जि० गया
१) बाबू पिगनसिंह (बेलसार) जि० गया
१) बाबू टाधोपाले (कसौटी) जि० गया
१) बगनलाल भाईशंकर मवेडो (मरमेज)
१) डा० मगनलाल बपजी (बावला)
१) दुर्गासहाय शुक्ल (रायबरली) डि० जहानाबाद
१) किशनलाल गर्गा (पतहर) जि० फतेपूर
१५) गुप्त काशी बनारस प्रादिक ४०१)